चेहरों से घिरा दर्पण

(३५ कहानियों का प्रतिनिधि संकलन)

राष्ट्रभाषा हिन्दी में कविता, कहानी, उपन्यास, आलोचना आदि की प्रेरणात्मक, सोद्देश्यपूर्ण रोचक पुस्तकें प्रकाशित करना ही हमारा परम् उद्देश्य है।

—प्रकाशक

सम्पादक —
रामगोपाल परदेसी

आगरा

चिन्तक, अन्वेषी,
कवि, आलोचक
डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'
को
सादर
स म र्पि त

निर्देशिका

दो शब्द

इस संकलन में ३५ कहानियाँ हैं। विविध विषयक यह कहानियाँ एक दूसरे से होड़ ले रही हैं।

हिन्दी के प्रख्यात कहानीकार श्री विष्णु प्रभाकर की कहानी 'आशीर्वाद' साहित्य की एक गौरवपूर्ण कृति है। आपको एक झटका लगेगा और······ व्यथित हृदय से सोचने को मजबूर हो जायेंगे। 'हिमालय की तलहटियों पर' एन० चन्द्र० शेखरन नायर की कहानी में स्व-प्रेम और देश प्रेम के बीच का प्रेरणादायक चित्रण है। व्रजरानी जैन को 'हरे काँच का टुकड़ा' कला के जौहरियों के लिए एक हीरा है। अब मोहन चोपड़ा की 'बूढ़ेरामजी' आपके सामने है। दैनिक जीवन की जीती जागती तस्वीर। रामगोपाल मिश्र की 'यात्रा' भी मजेदार रही। आपको खूब पसन्द आयेगी। 'चाँदरानी' आपके सामने है। इसे पढ़िए और कैलाश कल्पित को इस सुन्दर कहानी के लिए बधाई दीजिए। महेशचन्द्र 'सरल' की 'महमान' बड़े लोगों के बड़े दिमाग किन्तु छोटे हृदय की सही सामाजिक तस्वीर है। मलखानसिंह सिसोदिया की 'ग़ैर' में पढ़िए कि साम्प्रदायिकता के चश्मे से इन्सान को इन्सान ग़ैर दिखाई देता है। उमाशंकर मिश्र की 'अधूरी साधना' एक बार पढ़ना प्रारम्भ करके बिना पूरी किये आप छोड़ नहीं सकते। सोमदेव द्वार लिखित 'पोस्टरों की साजिस' व्यंग्य शैली की प्रतिनिध कहानी है। प्रवीण नायक की 'परिवर्तन' पढ़कर कदाचित् आप भी सम्मोहन और आकर्षण में अपरिवर्तित रहने का संकल्प करें।

गुरुबचन सिंह की 'भूखा सूरज' नारी की घुटन भरी सहन शीलता की करुण कहानी है। शिवनन्दन कपूर की 'पहला पत्र' मित्रों के शिष्ट विनोद की मधुर मुस्कान है। तुम डार-डार हम पात-पात। व्योमेश की 'प्रभाती' शर्मायेगी है। चौंकिए मत। यौन-मनोविज्ञान की विचित्रता पर विचार कीजिए 'कमीने कहीं के' श्रीमती शीला शर्मा ने चतुराई के साथ सभ्यता के पर्दे में कमीनापन करने वालों को नहीं बल्कि ······को कहलाया है। अब पढ़िए

विद्याभास्कर वाजपेयी की रोमांचित कर देने वाली कहानी 'सच्ची वीरता' 'धूल, धुआं और धूर्त' मानव पतन का निदान है। इसके लिए ज्योति प्रकाश सक्सेना बधाई के अधिकारी हैं। हृदयनारायण की 'समर्पण' पुरुष के सद्व्यवहार तथा धैर्य के समक्ष नारी का स्व-प्रेरित मधुर समर्पण है। ओमानन्द रू. सारस्वत की 'प्रतिमा'......शायद आपकी आंखों से भी मोती चू पड़े।

आपने सौन्दर्य मे दाग़ देखा होगा। अगर मार्तंड (सूरज) में देखना हो तो कपिलदेवसिंह परिहार की कहानी 'मार्तण्ड विधान में' देखिए। श्यामनारायण वैजल की 'नयी-भाबी' आपको जीवन की एक नई मान्यता देगी। 'बहके हुए कदम' रास्ते पर आये किन्तु देर से। गंगाप्रसाद गौड़'नाहर' ने बहके कदमों का मार्ग दर्शन किया है। श्रीमती सरोजिनी कुलश्रेष्ठ की 'आहट' प्रौढ़ नारी के जीवन-आंगन में गुद-गुदा देने वाली आहट है। यौवन की सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक तस्वीर। रामचन्द्र सागर की कला 'एक निष्कर्ष' प्रदान करती है, जो कटु-सत्य है। भालचन्द्र जोशी ने 'चुनाव का टिकट' में अवसरवादी तत्वों पर करारा व्यंग्य किया है। चिरंजीलाल माथुर 'पंकज' की 'समय और बदलते रंग' भावी मानव चित्र के मनोरम रंगों की क्रान्तिकारी अग्र सूचना है। श्याम किशोर 'निगम' की 'बन्दी' में आपका परिचय होगा एक स्वतंत्र बन्दी से। अब आइये 'अतीत के तीन पृष्ठों' पर। कमला जैन 'जीजी' ने एक अपंग बालिका की निरीहता का चित्रण किया है। सत्यनारायण गुप्ता ने 'समाजवाद की राह' बनाई है जो सब को रुचेगी। जितेन्द्रप्रसादसिंह की 'छिपकली' प्रतीक शैली की सशक्त कहानी है। विश्वदेव शर्मा की कहानी 'देवताओं का सांस्कृतिक शिष्ट मंडल' पढ़कर अवश्य ही आप यह कह उठेंगे—'भई मजा आ गया' अब मिलिए अनुपम कुमार द्वारा लिखित 'आंसुओं का सैलाब' में रेहाना तवायफ से। चौंकिए नहीं वास्तविकता का सजीव चित्रण है। कुमारी अमरजीत कौर की 'पायल के आंसू' में आप पीड़ा ही पीड़ा पायेंगे। जिन्दगी आखिर जिन्दगी है। भगवानचन्द्र 'विनोद' की 'जिन्दगी' देखिए। आपको बहुत प्रेरणा देगी। विनोद कुमार सिन्हा द्वारा लिखित 'पाप की निशानी' इस संकलन की अंतिम कहानी है, जो आपको बहुत कुछ सोचने को विवश करेगी।

आशा है सुधी पाठक प्रस्तुत संकलन को अवश्य पसन्द करेंगे। इस कहानी संकलन के सम्बन्ध में आप सबके सुझाव सादर आमंत्रित हैं।

—रामगोपाल परदेसी

आशीर्वाद

•

विष्णु प्रभाकर

•

जन्म-तिथि—२१-६-१९१२ ई० बी० ए०, प्रभाकर।
संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी, बंगाल गुजराती का पूर्ण
ज्ञान। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कहानीकार,
नाटककार, कहानी, उपन्यास, नाटकों
की अनेक पुस्तकें प्रकाशित
हो चुकी हैं।

●

दीपाली का मन ही नहीं, आँखें भी कड़वे पानी-सी बोझिल हो आयीं। खिसिया कर भोजन की थाली परे सरका दी और चुपचाप उठकर अपने कमरे की ओर चल दी। फिर एकाएक मुड़ी और माँ से पूछा— "तो मैं सोनिया को मना किये देती हूँ।"

माँ ने सिर उठा कर इतना ही कहा—"मैंने यह तो नहीं कहा।"

"कहा क्यों नहीं ? जब तुम उससे बोलती नहीं, बात नहीं करती तो क्या वह अपने को अपमानित नहीं अनुभव करेगी वह नहीं समझेगी कि ये लोग मुझसे नफरत करते हैं, ढोंगी हैं, दम्भी हैं। पहले तो तुम कभी ऐसी नहीं थी माँ !

और आगे कण्ठ अवरुद्ध हो आया। तेजी से वह वहाँ से चली गयी। चली गयी तो माँ की दृष्टि उठी। अनुभव से भरी उसकी बड़ी-बड़ी आँखें आज सचमुच उदास थीं। सभी जानते हैं कि घर में किसी को आया जानकर माँ का चेहरा सदा दीप्त हो उठता है। उससे वे खूब बातें करती हैं, खूब खुलकर हँसती हैं, खिलाती-पिलाती हैं। यानी कि पहली भेंट में वे उसे जता देती हैं कि वे युग-युग के परिचित हैं। 'अपरिचय' जैसा शब्द उसके कोश में है ही नहीं। सुरमयी घटाएँ जैसे मुक्त मन सब पर समान रूप से सदय हो उठती हैं, वैसे ही माँ है। दीपाली की सखी सईदा हो या गोपाल की मित्र टिंग लिंग, सभी ने माँ के पुलक

और प्यार की उष्मा को अपनी धमनियों में अनुभव किया है कि वह उनकी माँ है

यही सब सोचती-सोचती दीपाली बिस्तर पर जा गिरी। कपड़े तक नहीं बदले कितने आग्रह और उमंग के साथ उसने अपनी सखी सोनिया के जन्म-दिन के अवसर पर एक छोटी-सी पार्टी का आयोजन किया था, पर माँ तो जरा भी उत्साह नहीं दिखा रही। तो क्या उसकी शंका ठीक है कि माँ सोनिया से नफरत करती है ? जिस दिन वह पहली बार उसे लेकर आयी थी और बड़े चाव से माँ से उसने कहा था।—"माँ, यह है मेरी सखी सोनिया, कालेज में पढ़ती है, बड़ी प्यारी है !"

माँ जैसे बड़े परिश्रम से मुस्करायी हो। एक-दो प्रश्न पूछे फिर यह कहकर उठ गयी, "इसे चाय पिलाकर भेजना, आज मेरे सिर में दर्द है।"

दीपाली जैसे पत्थर हो रही। माँ को यह अचानक क्या हो गया ? उसके दर्द को वह जानती है। कभी-कभी दौरा जैसा उठता है। आज फिर शायद वही बात है। नहीं तो उमंगती, विहँसती माँ स्वयं मिठाई लाकर अपने हाथों से खिलाती, जैसे सईदा और टिंग लिंग को खिलाती थी।

लेकिन दूसरी बार, तीसरी बार, जब भी सोनिया आयी, माँ ने उसी उदासीनता से उसका स्वागत किया, जैसे उसके स्नेह का स्रोत अब चुक गया हो। चन्द महीनों में जाने कैसा परिवर्तन उसमें आ गया। हर विदेशी को देखकर वह अब अवसाद से भर जाती है। जो आँखें प्रसन्नता से भर उठती थीं वे ही अब आशंका और उपेक्षा से म्लान हो रहतीं। ऐसा क्यों होता है ? ऐसी क्या बात है जिसके कारण माँ को यह सब निरर्थक लगने लगा है। सोचा था, शायद यह अवसाद अस्थायी है। जन्म-दिन की पार्टी की बात सुनकर वे सब कुछ भूल जाएँगी और पहले की तरह जैसे सईदा को पार्टी दी थी, जैसे टिंग लिंग को उपहारों से लाद दिया था, अपने हाथ से बनाकर खीर खिलायी थी, वैसे ही अब भी करेंगी। माँ की खीर जैसे अब जगत प्रसिद्ध हो गयी है। जिसे माँ ने अपने हाथ से खीर खिला दी, उसे भगवान का आशीर्वाद मिल गया। लेकिन आज की बात से दीपाली का मन बहुत कड़वा हो गया। धीरे-धीरे वह उठी और बाहर आ गयी। सन्ध्या का सूरज कभी का ढल चुका था। सारा घर बिजली

के प्रकाश से दीप्त था, पर दीपाली की दीप्ति तो जैसे धूमिल हो उठी थी। आशा थी कि माँ स्वयं आकर उससे कुछ पूछेंगी, पर माँ तो वहाँ की वहाँ स्थिर बैठी है। देखकर दीपाली को काठ मार गया। पास आकर बोली—"माँ, माँ!"

माँ एकाएक तीव्रता से काँपी—"हाँ, ओह, दीपू है। हाँ बेटी, पार्टी देने को कहा है तो मना मत कर देना। इज्जत की बात है। पर मुझसे इस बारे में अब कुछ न पूछना।"

दीपाली भर्रायी-सी बोली—"बस, एक बात बता दो माँ।"

जादू से बँधी-सी माँ वहीं बैठ गयी। बोली—"जानती हूँ, क्या पूछेगी। यही न, कि मैं तेरी इस सोनिया को वैसा प्यार क्यों नहीं करती, जैसा सईदा और टिंग लिंग को करती थी।"

मन्त्रमुग्ध-सी दीपाली ने कहा—"हाँ, माँ, यही पूछती हूँ।"

माँ जैसे कहीं बहुत दूर से बोल रही हो—हाँ सईदा को कितना प्यार करती थी, कितना। ना-ना, तू नहीं जानती, कोई नहीं जानता, मैं भी नहीं जानती। ओह! प्यार करना कितना बुरा है?"

सहसा दीपाली ने देखा कि माँ का रक्तहीन चेहरा किसी आन्तरिक संघर्ष से विकृत होता जा रहा है, पर कहानी की उत्सुकता ने उसे जड़ बनाये रखा। माँ कहती रही—"हाँ, प्यार करना कितना बुरा है, यह मैंने अभी सीखा है। सईदा को कितना प्यार किया, उसकी शादी को मैंने बेटी की शादी करके मनाया, पर सईदा से सईदा खाँ बनते ही वह क्या हो गयी!"

"क्या हो गयी माँ?"

"तू नहीं जानती?" माँ तीव्रता से बोली—"इस खान की गोली ने ही तेरे पिता के प्राण लिये थे।"

दीपाली जैसे चीख उठी—"माँ!"

फिर कई क्षण कमरे में मौत जैसा सन्नाटा छाया रहा। उन क्षणों में माँ ने अपने तन-मन को फिर से सम्हाल लिए। भर्राये, पर दृढ़ स्वर में बोली—"जाने दे सईदा को। उन लोगों से हम लड़ते-झगड़ते भी थे। पर टिंग लिंग के लोगों से तो हमारा कोई झगड़ा ही नहीं था, कभी मनमुटाव

तक नहीं हुआ। न जाने कब से प्यार करते चले आ रहे थे। वह भी कितनी प्यारी थी। हँसती तो जैसे मोती बिखर-बिखर जाते। पर एक रात में वह एकाएक परायी हो गयी। पराई तो अपनी कोख की जायी भी हो जाती है, पर वह तो ऐसी हो गयी जैसे युग-युग से हम शत्रु ही रहे हों। न जाने कैसे वह इतने दिन तक अपने को छिपाये रही। कैसे मेरी अनुभवी आँखें तक उसे पहचान न सकीं। उसी के कारण तेरे जीजा आज न जीते हैं न मरते हैं। दोनों हाथ-पैरों की उंगलियाँ काट दी गयी हैं।" कहते-कहते माँ बुरी तरह विचलित हो गयी। टप-टप करते आँसू सहसा बाँध तोड़ बैठे। दीपाली ने माँ को अनेक बार रोते देखा था, पर इस तरह नहीं जैसे जल उबल-उबल कर उमड़ रहा हो। दीपाली के किनारे और भी बच्चे थे। किसी तरह साहस बटोर-कर माँ को सान्त्वना देती। बड़ी कठिनता से अपने उबाल को रोके चुपचाप उन्हें रोते देखती रही।

सहसा एक झटके के साथ माँ उठ बैठी। अपने को सम्हाला, कहा—"मैं भी कैसी पागल हूँ। चल उठ, काम कर। पार्टी को कह दिया है तो होगी। बस........."

वाक्य को अधूरा ही छोड़कर माँ वहाँ से चली गयी। दीपाली ने भी कोई जवाब नहीं दिया। लेकिन भीतर जो मंथन आरम्भ हो गया था वह उमड़ता-घुमड़ता रहा। वह सारी रात उसने आँखों में ही काट दी।

अगले दिन जन्म-दिवस की पार्टी का कार्यक्रम प्रफुल्लता के वातावरण में आरम्भ हुआ। दीपाली को अन्तर की व्यथा छिपाने के लिए खूब हँसना पड़ा। जरा-सा मौका पाते ही वह ऐसे हँसती कि भूचाल आ जाता। माँ को देखकर तो कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि उसके अन्तर में कहीं कचोट है। सोनिया ने रेशमी साड़ी पहनी थी और जूड़ा बनाकर मोतिया की कलियों से उसे सजाया था। उसकी महक से महकती वह शुद्ध हिन्दी बोलने के प्रयत्न में बारबार लड़खड़ाती और सारा कमरा अट्टहास से गूँज-गूँज उठता।

भोज का अन्त माँ की खीर से होता था। पर दीपाली के सारे प्रयत्न जैसे उस अन्त को रोकने में ही लगे हुए थे। चारों ओर से 'नहीं-नहीं, नो-नो के

कोरस के बावजूद वह वर्जित थी, जैसे हिस्टीरिक हो गयी हो। लेकिन असीम भी तो इसीलिए है कि सीमा है। मौज की भी सीमा थी। सभी ने पहले धीमे-धीमें और फिर प्रकट रूप में कहा—"माँ कहाँ है ? खीर क्यों नहीं लातीं ?"

दीपाली को एकाएक जैसे काठ मार गया हो। भागी-भागी अन्दर गयी और लौट आयी। पीछे नौकर था, खीर का कटोरा लिये। एक वाचाल लड़की बोल उठी—"हमने माँ को बुलाया था, नौकर को नहीं।"

सोनिया ने कहा—"मैं जानती हूँ. माँ सबको खीर खिलाती हैं। उन्हें बुलाओ न, मुझे, भी खिलाएँगी।"

दीपाली बोली—"माँ लेट गयी हैं। अचानक उनकी तबीयत खराब हो गयी है।" कहते-कहते उसके मुख का रक्त जैसे निमिष मात्र में सूख गया। सोनिया ने उसे देखा और आशंका से बोली—'तुम्हें क्या हुआ ?"

"कुछ नहीं, कुछ भी तो नहीं।" और दीपाली जोर से हँस पड़ी, लेकिन उस हँसी पर जैसे कुहरा छा रहा हो। बोली—"तुम लोग खीर खाओ। सोनिया को मैं खिलाऊँगी।"

सोनिया जैसे क्षण भर में अभागिन बन गयी हो। उसने अपने को बेहद अपमानित महसूस किया। बोली—"जानती हूँ, माँ मुझे प्यार नहीं करतीं।"

दीपाली बावलों की तरह कहने लगी—"नो-नो, सोनिया डियर, बाई गाड, माँ तुम्हें प्यार करती हैं। वह बस प्यार ही कर सकती हैं। अचानक तबीयत खराब हो गयी है। सच, कल भी उन्हें दौरा पड़ गया था।"

सब लड़कियों को जैसे पाला मार गया हो। समझ ही नहीं पा रही थीं कि क्या सच है। इतना स्पष्ट कि माँ बहाना कर रही हैं। लेकिन फिर इस बेचारी विदेशिनी को घर बुलाकर अपमानित क्यों किया ?

सोनिया अभी तक खड़ी थी। संयत स्वर में बोली—"तुमने मुझे बुलाया, मेरा मान किया, इसके लिए कृतज्ञ रहूँगी। पर अब यहाँ रुक न सकूँगी।"

दीपाली रोने को हो आयी बोली—"नहीं, नहीं तुम्हें रुकना होगा। बाई गॉड, मैं प्राण दे दूँगी, पर तुम्हें जाने नहीं दूँगी।"

दोनों जैसे अर्धचेतन अवस्था में अड़ गयी थीं दोनों जैसे मन की बात न कहने के लिए कृति-संकल्प थीं इसलिए स्थिति और भी भारी हो गयी तभी बाहर किसी की पग-ध्वनि से वे चौंक पड़ीं द्वार पर मां खड़ी थी हाथ में खीर का कटोरा और आंखों में म्लान मुस्कान जैसे डूबते दीपक का प्रकाश चेतन होने की चेष्टा कर रहा हो। सभी की सकपकायी दृष्टि एक साथ उन पर अटक गयी। फिर जैसे कोरस में बोल उठीं—"लो, मां तो यह आ गयीं।"

मां ने कहा—"हां, मैं आ गयी। तुम अब आ न सकोगी, सोनिया बेटी। मैं तुमसे नफरत नहीं करती। किसी से नहीं करती। मैं तो बस यही सोचती थी कि जिसे मैंने मन से प्यार किया, वही मेरा दुश्मन बन गया। मेरे हाथ की खीर खाकर कहीं तुम भी.......।"

और मां हंस पड़ी। वह खोखली हंसी रात के सन्नाटे में किसी एकाकी पक्षी के उड़ने की आवाज जैसी लगी। किसी ने कुछ नहीं कहा, जुम्बिश तक नहीं की, जैसे सबकी चेतना लुप्त हो गयी हो। सोनिया चुपचाप यन्त्रवत खाती रही, दीपाली हर्ष से रोती रही और सखियां देखती रहीं, बस देखती ही रहीं।

●

हिमालय की तलहटियों पर

★

एन० चन्द्र शेखरन नायर

मलयालम भाषा के लोकप्रिय लेखक। कहानी, कविता, उपन्यास, आलोचना आदि साहित्य का सृजन। विभिन्न भाषाओं में रचनाओं का अनुवाद हुआ है। ८ पुस्तकें प्रकाशित। वर्तमान में आप गांधी कालेज, त्रिवेन्द्रम में प्राध्यापक हैं। साथ ही दो मासिक-पत्रों का सम्पादन भी कर रहे हैं।

●

ढेरों बारूद के उस सुरक्षित गोदाम में आग लगा देने के पहले उसने एक बार और विचारा; मैं एक चीनी जवान के प्रेम-पाश में क्यों फंस गयी ? हाय ! मेरा हृदय उस समय हिमालय की शुभ्रता से भी अधिक निष्कलंक था। उसकी उस बनावटी कटाक्ष में भी मैंने स्निग्ध स्नेह की मुस्कुराहट देखी।

च्यांग की खून में लथ-पथ सुन्दर सूरत स्मरण कर उसकी आंखें भर गयीं।

"शीला ! अब मैं थोड़ी दूर तुझे उठा लूंगा। क्यों बिटिया ?" उसके बाप ने कहा।

"नहीं बाबूजी। मैं अभी चल सकती हूं।"

थोड़ी दूर पर एक शेर गर्ज उठा ! शीला थर-थर कांप गयी। त्योंही उसके कोमल बांह पर उसके बाप की पकड़ और मजबूत हो गयी। उसके कान तो ऐसे गर्जनों के आदी हो गये हैं।

"परवाह नहीं बेटी। कोई शेर होगा। अपनी मांद की ओर जा रहा होगा।"—विधु ने बेटी को सांत्वना दी। शीला संभल गयी। वह बोली "क्यों दादा, यह शेर हमारे घर के बिलाव का भी राजा है ?

"हां बेटी, शेर तो सारे जानवरों का राजा ही तो है।"

"मेरे सवाल का मतलब ?"

"क्या ?"

"यही कि घर से निकलने के पहले उसकी एक सिफारिशी चिट्ठी भी ले चलते……"

"तो चिट्ठी पढ़कर राजा शेर शीला नामक पगली को बिना सताये छोड़ देता……यही बात है न ?"

बेटी को पगली पुकारने का मौका पाकर बाप बहुत खुश हुआ। इससे हार न मानने वाली शीला का पागलपन उबल उठा।

"क्यों दादा, दूर-बहुत दूर-दिखाई देने वाली उन चोटियों को सिर दर्द नहीं होगा ? बेचारी कब से इस आकाश को ढोये खड़ी हैं।"

"दर्द होगा, दर्द होगा, अभी तू जरा तेज चल।"

'चुसूल' से वह तिजारती काफिला दूसरे दिन सबेरे रवाना हो गया। तीन पड़ाव और पार करें तो वे 'रुडाग' पहुंचेंगे। 'लेय' से छः पड़ाव पार करके वे चुसूल पहुंचे थे। उस काफिले के ज्यादातर व्यापारी रुडाग से (जो चीन के अन्तर्गत है) ऊन के कपड़े, नमक आदि चीजें खरीदकर भारत में लाकर व्यापार करने वाले हैं। रुडाग जाने की अनुमति उन्हें चुसूल से लेनी पड़ती है।

शीला का बाप भी ऐसा ही एक व्यापारी है। वह बड़ा शान्त स्वभाव वाला है। इसलिए सब का प्यारा है। मुद्दत से वही इस काफिले का अगुआ है। खतरों को सूंघ लेने की और उनमें से बच निकलने की होशियारी और हिम्मत उसमें मौजूद है। अभी तक वह कभी भी खतरे का शिकार नहीं हुआ

है। इस बार रुडाग चलने निकला तो शीला ने हठ ठाना। स्नेह संपन्न पिता ने अपनी बेटी को भी साथ ले चलने का इरादा किया। शीला की उपस्थिति के कारण सफर में जिन-जिन मुसीबतों का उसे खौफ था लेकिन अब अपनी प्रतीक्षा के विपरीत बहुत कम कठिनाइयां नजर आयीं तो उसका शीला के प्रति प्यार कुछ हद तक ज्यादा हो गया।

इल्म पाने की किस्मत शीला को उसकी खूबसूरती ने हासिल कर दी थी। 'लेय' के एक फौजी अफसर के यहां विघु का कई वर्षों से व्यापार सम्बन्ध रहा। इस तरह से शीला भी उस घर के लोगों से परिचित ही नहीं वह उस घर का एक अंग ही बन गयी। बचपन से ही वह देखने में सुन्दर थी। उसके हल्के लाल घुंघराले बाल, नीली भौंहे, विशाल नयनों के आगे टेढ़ी चपटी बरुनियां, पक्की अंगूरों जैसी पुतलियां और संतरे के रंग के गाल हर किसी को अपनी ओर आकर्षित करने के काबिल थे। रेशमी चादर कन्धों पर लटकाये, नीला लहंगा पहने ठुमक-ठुमक चलने वाली हिमगिरी की वह लाड़ली शुरू-शुरू में उस फौजी अफसर के लिये एक कौतुक की वस्तु थी। कालान्तर में वह कौतुक ठोस आकर्षण के रूप में परिणत हो गया। आखिर निसंतान अफसर दम्पतियों के घर में शीला ने उनकी उस कमी को दूर कर दिया। फौजी अफसर के लिये शीला उनकी बेटी हो गयी।

रुडाग की मंडी में बहुत से छबीले युवक विविध उद्देश्य से आया करते थे। उनमें एक युवक को शीला बहुत पसन्द आयी। तिजारती काफिलों के साथ आयी अनेक लड़कियों को उसने पहले भी देखा था लेकिन शीला में उसने एक नया ही आकर्षण पाया। शीला को भी रुडाग का जीवन बहुत अच्छा लगा। रुडाग के एक हफ्ते के जीवन में उन दोनों की कई बार चार आंखें हो गयीं। वह छबीला युवक शीला को देखते ही मुंह बना लेता था। शीला को उसमें बड़ा मजा आता था। दोनों में कभी बातें तो नहीं हुई क्योंकि उनके बीच में भाषा एक बड़ी रुकावट थी। फिर बचपन के निष्कलंक स्नेह की भाषा हिमालय जैसे प्रतिबन्धों का उल्लेखन कर युवा हृदय को परस्पर मिलाने की प्रेरणा तो देता ही है।

वैसे तो वह मधुर मिलन अधिक दिनों तक नहीं हुआ। शीला लेय में लौट आयी। बीच-बीच में वह उस चीनी युवक को याद कर लेती। इससे

अधिक वह क्या करती ? उसकी उम्र ही कितनी थी ? फिर भी उसे लगता कि वे स्मृतियाँ उसके हृदय को छू लेती हैं। धीरे-धीरे उस युवक का रूप अस्पष्ट हो गया और मुँह बनाने का वह भाव मात्र स्मरण में रह गया।

शीला को स्कूल में ही नहीं कालेज में भी पढ़ने का सौभाग्य मिल गया। स्कूल में तो वह एक असाधारण छात्रा थी। इसलिये वह छात्रवृत्ति भी पा सकी। वह अपने स्कूल में ही प्रसिद्ध नहीं थी। स्थानीय अन्य स्कूलों के खेलों में भी वह बराबर भाग लेती थी और कई बार पुरस्कार पा गई थी।

"लेफ्ट, रैट, लेफ्ट रैट"·······लेफ्ट, रैट·······पीछे हट·······मुड़—लेफ्ट, ·······लेफ्ट······· ।"

अपने कालेज के एन० सी० सी० विभाग का अण्डर अफसर पद शीला अनायास प्राप्त कर सकी। फौजी वर्दी में शीला खूब फबती थी। एक उत्तम अफसर की सभी योग्यता उसमें थी।

"नमस्ते अफसर साहब।"

"नमस्ते शीला !" कालेज के एन० सी० सी० अफसर च्यांग ने प्रत्याभिवादन किया।

"आपको हमारा देश बहुत पसन्द है न ?" शीला ने सहज मुस्कुराहट से सवाल किया।

अफसर च्यांग निवृत्ति की दुनिया में थोड़ी देर सर्वस्व भूले खड़े रहे। फिर बोले—

"भारत ने मुझे खूब आकृष्ट कर लिया है शीला ! तुम्हारी जैसी देशभक्त देवियों की जन्मभूमि ठहरी यह पुण्य भूमि।"

"आप कभी रुडाग गये हैं ?"

"क्या पूछा—मैं रुडाग गया हूं ?"

"हां।"

"रुडाग मेरा जन्म-देश है। क्यों ?"

"यों ही·······थोड़ी देर बाद शीला ने लज्जा भाव से किन्तु दबी हुई हँसी में पूछा—वहाँ की मंडी से क्या सरोकार था ?"

च्यांग ने अपनी पोशाक पर नजर डाली। क्योंकि उसके वेष में कहीं कुछ विलक्षणता हो गयी—यह सन्देह उन्हें हो गया। परेड का पोशाक बदल कर टहलने के वेष में निकले थे। जो हो, अपने वेष में कुछ अनौचित्य न पाकर भी वे असमंजस में खड़े रहे। अपने अफसर को यों असमंजस की हालत में देख शीला का उत्साह बढ़ गया। जोश के मारे वह पूछ बैठी—

"पहले लड़कियों को देख मुँह बनाने की आदत थी आप को ?"

"आदत तो नहीं थी। किन्तु मुँह तो बनाया है। एक छोटी खूबसूरत लड़की को देख।"

"क्यों, वह आपको पसन्द नहीं थी ?"

"यह बात तो नहीं। वह बड़ी ही नटखट थी।"

"उन संकल्पों का फिर क्या अंजाम हुआ ?"

"मेरे मन में उसके बाप से मिल कर बातें करने की बलवती इच्छा हुई। अगले दिन जब मैं सजधज कर मंडी पहुँचा तब तक वह तिजारती काफिला वापस जा चुका था। शीला ! मेरी बातों पर अविश्वास न करना। फिर मेरी बुद्धि स्थिर ही नहीं रही……हां इन बीती बातों को दुहराने से क्या फायदा ?"

"जो हो, अब तो आप उसे बिलकुल भूल चुके हैं। अच्छा हुआ। आज आपकी बुद्धि का संतुलन बिलकुल ठीक है—यह इस बात का सबूत है कि आप अब उस लड़की को भूल चुके हैं।" यह कहकर शीला जोर से हँस पड़ी। च्यांग के अचरज का पारा एक दम बुलन्द हो गया। शीला को वे गौर से देखने लगे। रुडाग की मंडी में दस बरस पहले जो नटखट खूबसूरत लड़की देखी वही उस समय उनकी आंखों के सामने दिखाई दी। मारे जोश के चिल्ला पड़े—

"शीला ला……।………"

"अफसर साहब मैं शीला ही हूं।"

"नहीं ……शीला………रुडाग में………?"

"हां, हां, मैं वही शीला हूं। मैं ……मैं भी रुडाग आयी थी। उस वक्त

एक छबीला युवक मुझी को लक्ष्य करके मुँह बनाया करता था। अब भी मुझे याद है।

च्यांग के आनन्द की सीमा नहीं थी।

"वाहरी हिम्मत ! जननी जन्म भूमि के लिये कौन ऐसा लड़-भिड़ और मर-मिट सकता ? देखते नहीं हमारे प्राण प्यारे बहादुर जवानों को ? जो अपने इर्द-गिर्द के जवानों को गिरते हुए देख लेने पर भी अचंचल एवं निर्भय होकर आगे को ही बढ़ रहे हैं। वाहरी आत्म-शक्ति !! मानव में जब तक बहादुरी कायम है तब तक मारक अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण महज बेवकूफी नहीं तो क्या है ?"—शीला के पास सोचने के लिये वक्त कहाँ ? घने अंधकार में भी उसने अपनी उँगलियों को रक्त में रंगा हुआ अनुभव कर लिया। गरमा-गरम खून की गंध ! हाथ का वह खत उसने अपने जेब में दबाये रखा।

"भारत ने मुझे खूब आकृष्ट कर लिया है। शीला ! तुम्हारी जैसी देशभक्त देवियों की जन्मभूमि ठहरी यह भारतभूमि।"

"हाय ! मेरे प्यारे च्यांग। तुमने मुझे क्या से क्या बना दिया।" शीला ने गहरी साँस ली। उसकी स्मरण शक्ति एक दम सजग हुई। यहाँ साँस लेने में भी खतरा है। तोपों के लगातार गर्जन सुनाई दे रहे हैं। जहाँ-तहाँ आग की ज्वालायें सिर उठा रही हैं। उसके प्रकाश में धुओं का उठना साफ दिखाई दे रहा है। युग-युगों से मौन हिमालय घोर गर्जन कर उठा। शीला को लगा कि एक महान गणतंत्रराष्ट्र का भविष्य उसी पर निर्भर है।" वह समूल सिहर उठी। 'जीप' से बाहर निकली। अब तक उसने फील्ड कमान्डर च्यांग की वर्दी पहन ली। जीप में पड़े च्यांग के मृतक शरीर पर उसने अपने कुछ वस्त्र पहना दिये। वह पोटली जिसे वह जानबूझकर सदा पास रखती थी हाथ में ले ली। इतने में नजदीक से एक गोली चीत्कार कर निकली। पलभर में उसने अपनी बन्दूक भी खाली कर दी। एक चीनी पहरेदार अपनी भाषा में कुछ बड़बड़ाता हुआ धराशाही हुआ। शीला के भी बायें गाल में गोली लगी थी। बची-खुची सारी शक्ति लगा कर उसने वह पोटली फेंक ही दी। अपना परिश्रम सफल होने के लक्षण देख कर वह प्रसन्न हुई पर उसका शरीर असह्य दर्द से तड़प उठा। बेहोश हो जमीन पर लेट गयी।

देशप्रेम से भरी एक दारुण कथा इस तरह यहीं समाप्त हो गयी होती। क्योंकि शीला के इस अद्भुत पराक्रम के साक्षी केवल दो ही जीव थे—च्यांग और एक चीनी जवान। अब तक के दोनों काल कवलित भी हो चुके थे। लेकिन न जाने कौन उसको वहां से उठा ले गया।

सबेरा हुआ तो चीन की सीमा पर अप्रत्याशित परिवर्तन नजर आये। चीनियों का एक विशाल गोदाम जिसमें महीनों तक युद्ध जारी रखने के लिये बारूद जमा किया गया था जल कर राख हो गया। हजारों चीनी जवान उसके कारण जल भुन गये। फील्ड कमांडर च्यांग खंजर के घाव से 'जीप' में मरे पड़े हैं। समाचार पाकर 'हेकमान्ड' ने फिलहाल युद्ध बन्द करने का ऐलान कर दिया।

जिन चीनी फौजी अफसरों ने शीला को गिरफ्तार कर लिया था उन्हें किसी न किसी तरह शीला के प्राण बचाने का मोह सा हो गया। क्योंकि उन्होंने शीला के जेब के खत पढ़ लिये थे। उनका ख्याल था कि शीला से उन्हें बहुत से रहस्यों का पता लग सकता है। च्यांग की बैठक से जो दो खत उन्हें मिले थे उनसे यह स्पष्ट था कि च्यांग और शीला एक दूसरे से दिल खोलकर प्रेम करते थे। शीला के अभिभावक 'लेय' के फौजी अफसर की पत्नी के खत ने चीनी फौजी अफसरों को और भी आकृष्ट कर लिया था। वह खत उन्होंने पढ़ लिया—

'लेय'
११-१०-१९६२

प्यारी बेटी!

यह खत लिखते नहीं बनता। मेरा एक-एक क्षण असह्य वेदनाओं में बीत रहा है। यह जानकर कि तू सीमा पार 'तवांग' जा रही है, न मुझे और न तेरी माता को शान्ति है। तेरी माँ से मुझे यह मालूम हुआ कि तेरे दादा को चीनियों ने रुडाग में नजरबन्द कर लिया है। बेटी! तेरी माँ भी एक हफ्ते से मेरे साथ है। उनकी आँखें निरन्तर बहती ही रहती हैं। खुदा की मर्जी में किसी को दखल नहीं। तेरे अभिभावक मेरे सर्वस्व सातवीं तारीख की रात को 'नेफा' को जाते हुए 'जीप' की दुर्घटना से जीवित नहीं.........हम माताओं के लिये तेरे सिवा और किसी का सहारा ही नहीं। तेरे दर्शन के लिये हमारी आँखें तरस रही हैं। आशा है कि तू हमें दर्शन

देकर अनुगृहीत करेगी। बहुत सी बातें तुझे जनाने की हैं। पर अब ज्यादा लिख कर तुझे और सताना नहीं चाहती।

तेरी

अभिभावक माँ।

चीनियों के युद्ध बन्द करने के तीन रोज पहले च्यांग के दफ्तर से प्राप्त सूचना—

"तवांग के युद्ध में ३१२/सी रैफिल्स बटालियन ने तीस भारतीय जवानों का काम तमाम कर दिया। एक जवान जो गोली का शिकार न बना था, गिरफ्तार कर लिया गया। मगर वह पुरुष वेष में एक स्त्री थी। वह अब फील्ड कमान्डर च्यांग के अधीन है। हमारे पक्ष के १६० जवानों में केवल सात जवान बचे हैं। भारतीय प्रदेश तवांग हमने अपने अधीन कर लिया है।"

च्यांग के निकट साथी अफसरों से यह पता लगा कि कैद की गयी वह स्त्री दूसरे दिन च्यांग से अन्तरंग मित्रता करती पायी गयी। लेकिन उसी दिन रात को किसी मतभेद में पड़कर एक दूसरे के विरोध में बातें करते हुए भी पाये गये। उसके बाद दो दिन तक च्यांग अत्यंत उदास दिखाई दिये। तीसरे दिन रात को दोनों एक ही जीप में सवार हो पड़ाव से निकले थे।

इस प्रकार उन्होंने अनुमान कर लिया कि च्यांग की हत्या शीला ने की और उसी ने बारूद के गोदाम में आग भी लगा दी है।

अस्पताल में शीला बेहोश पड़ी थी। बेहोशी में उसके मुँह से बराबर ये शब्द निकलते रहे—"मेरे प्रिय च्यांग। आपको मैं दिल से चाहती हूँ। मुझे माफ करो।" होश आने के दूसरे ही दिन वह चीनी हैकमान्ड के सामने हाजिर कर दी गयी। कितने ही अफसर वहाँ मौजूद थे। शीला को समझने में देर नहीं लगी कि उसकी सुनवाई होने वाली है।

च्यांग की लाश वहाँ लायी गयी। शीला फूट-फूट कर रोने लगी। उनके ठंडे ऐंठे हाथ वह बड़े प्रेम से सहलाने लगी।······

शीला कभी फूट-फूट कर रोती और कभी-कभी ठहाका मार हँस पड़ती। उस हालत में उसे जो कोई भी देख लेते उसे पगली ही मान लेते।

घोर अंधकार। चौमंजिले मकान की सबसे ऊपर की कोठरी में है

शीला। कोठरी के सभी द्वार बन्द हैं। आंखों पर पट्टी बांधे वह उस कोठरी में पहुंचा दी गई थी। उस कमरे की श्मशान मूकता में शीला का हृदय थर-थर कांप उठा। किसी अज्ञात भय से वह एकदम घिर गयी।

आवेश में आकर वह खिड़की की तरफ दौड़ पड़ी। उस पर मुक्का दे मारा। पर व्यर्थ। इसी समय पीछे से दरवाजे के खुलने की आवाज आयी। साथ ही कर्कश तथा शराब से सराबोर स्वर "प्यारी……"

शीला एकदम सहम उठी। मदोन्मत्त कमान्डर जनरल मुस्कराये खड़े हैं।

"नाम शीला ही है न?"

सन्नाटा

"शीला को मैं भुवन सुन्दरी पुकारूँ?"

शीला के हृदय में असह्य वेदना का अनुभव हुआ। उसे खबर ही नहीं कि क्या होने वाला है।

"हमने तो सुना था कि भारत की स्त्रियां देवियां हैं। मगर अभी-अभी हमारी आंखें खुली कि वे प्यार करना ही नहीं जानती बल्कि मारना और मरना भी जानती हैं। कोई बात नहीं………भुवन सुन्दरी………शीला देवी……"

शीला ने उन्मत्त तथा भयावह उस नरपिशाच की ओर आंख उठा कर देख लिया। मांस दाह की काली छाया उस नराधम की आंखों में स्पष्ट झलकती थी। उसके वे बड़े-बड़े मजबूत हाथ झट शीला के कोमल बदन की ओर बढ़े।

"हट, कुत्ते" उस भीमकाय फौजी अफसर के गाल पर एक प्रहार और साथ ही साथ बिजली की चाल से वह बाहर को कूद पड़ी। परन्तु उसकी कूद एक 'बायनट' की तरफ थी। उसमें बिधने की देरी थी कि उस कमान्डर जनरल की चार गोलियां उसकी देह में लग गयीं।

हरे काँच का टुकड़ा

★

ब्रजरानी जैन

खुर्जा निवासी स्व० श्री जुगलकिशोर मित्तल के यहाँ १९३३ ई० में जन्म हुआ। कवि श्री नेमीचन्द्र जैन के साथ १९५० में विवाह। कविता, कहानी तथा लेख लिखने में विशेष रुचि। खाली बैठना पसन्द नहीं। पढ़ने अथवा लिखने में अपने को व्यस्त रखती हैं। रचनाएँ समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं।

●

मानता हूँ कि काशी में जेब कतरों की संख्या कम नहीं है पर मेरा भी तो काशी जाने का यह पहला ही मौका नहीं था। भीड़ में टिकट लेना भी कोई नई बात नहीं थी। जेब कटने के इस प्रथम तथा अजीब अनुभव पर अपने ऊपर बड़ी खीझ-सी उठ रही थी। घर वापस जाना जरूरी था, अतः अपने दफ्तर के एक परिचित से कुछ रुपये लेकर स्टेशन की ओर चल पड़ा। मुगलसराय की गाड़ी में अभी चार घण्टे की देर थी। गर्मियों की धूप से बचता हुआ मकानों की छाया में पैदल ही चल दिया।

"भाई जी ! क्या बजा होगा अभी ?" पास के चबूतरे पर बैठे एक अपरिचित ने पूछा।

थक तो गया ही था जरा रुक कर मैं बोला—"यही १॥ के करीब है। आपको भी बाहर जाना है कहीं ?" सोचा स्टेशन की ओर चलें तो रास्ता आसान हो जाये।

"नहीं भाई, ऐसे ही पूछा था" और अनायास वह चौंक-सा पड़ा। "अरे"।

मैं हैरत में पड़ गया "क्यों क्या बात है ? आप चौंक क्यों गये ?"

तम्बाकू और पान के कारण मैले व गन्दे दाँतों को निकालता हुआ वह बोला "आप कुछ सुस्त नजर आ रहे हैं।"

"हाँ, मेरी तबियत ठीक नहीं है और फिर गर्मी भी........"

बीच ही में बात काट कर वह बोला। "भैया, हमसे छिपाते हो ? आपका कुछ नुकसान नहीं हुआ है ?" उसकी गम्भीरता में कुछ जादू का-सा असर था।

"हाँ, हो तो गया है। पर आपको कैसे मालूम ?" हैरानगी से मैंने पूछा और थोड़ी थकान मिटाने के लिहाज से बात के दौरान मैं वहीं बैठ गया।

"आपकी दया से ग्रहों का थोड़ा बहुत ज्ञान है। तुम्हारे मस्तक से मालूम होता है कि तुम्हारा शनि ठीक नहीं है। जरा हाथ तो दिखाना" मैंने अपना हाथ फैला दिया। वह बोला "और यह देखो न, यह रेखा, अभी तो ग्रह के कोप का प्रारम्भ ही है। ६ मास तक ऐसे ही कष्ट रहेंगे। पिछले दो दिनों से ही इसकी प्रबलता बढ़ी है।"

मुझे उसकी बातों पर विश्वास जमने लगा। कुछ ऐसा लगा कि सचमुच ही पिछले दो दिनों से विचित्र घटना-चक्रों से गुजर रहा हूँ। सोच ही रहा था कि वह फिर बोला "इतनी चिन्ता मत करो। ग्रहों की शान्ति के लिये उपचार भी तो है।"

मुझे अब ध्यान आया कि मेरे फैले हाथ और उसके ज्योतिष ज्ञान को देख कर थोड़ी बहुत भीड़ जमा हो गई थी। पंडित जी आगे कह रहे थे....

"मैं अनुष्ठान कर दूँगा पर खर्च थोड़ा तो पड़ेगा ही।"

ग्रहों की शांति की बात सुनकर संतोष की साँस ले कर मैंने पूछा। "क्या खर्च पड़ेगा, महाराज।"

बोले, "बस, यही करीब १०० रुपये।" इतनी लम्बी रकम सुनकर मैं घबरा गया। १२० रुपये मासिक तो बीमार पत्नी और छोटे भाई की पढ़ाई के लिये ही पर्याप्त नहीं थे। चार बच्चे अलग। न नौ मन तेल होगा और न राधा नाचेगी। आज के युग में जब किसी दफ्तर के चपरासी से लेकर साहब तक को खुश करने के लिए खर्च करना पड़ता है, ग्रहों को प्रसन्न करने के लिए भी खर्च की बात सुनकर कुछ हँसी भी आ गयी। सम्भवतः वह भी मनोभावों को समझ गया था तभी बोला, "अगर यह न हो सके तो जाने दो, दो माह के लिए नमक खाना छोड़ दो और कलम का स्पर्श मत करो।"

"नमक का प्रयोग छोड़ना तो सम्भव था पर दो मास तक कलम का स्पर्श······· विचार मात्र से मैं सिहर उठा। फिर घर का खर्च कैसे चलेगा। मैं परेशान हो उठा। तो ग्रहों की शांति संभव नहीं है। "अबे, क्या बकता है, बेचारे बाबूजी को चक्कर में डाल रहा है। बड़ा ज्ञानी बना है।" भीड़ में खड़े एक सज्जन से न रहा गया तो बोल पड़े। सभी की नजर उन पर उठ गई। कोई सेठ जी थे। सफेद मलमल का कुर्ता, पतली-सी धोती, सिर पर कामदार टोपी, कुर्ते में सोने के बटनों के पास पान के निशान। ज्योतिषी महाराज इस अनायास प्रहार से तिलमिला उठे। यह तो उसका और उसके ज्ञान का अपमान था।

बोला, "तुम कौन हो जी।"

"आदमी हूँ मैं तो, तू तो बड़ा ज्योतिषी है न। तो बता मेरे हाथ में क्या है?" और सेठ ने अपनी दाहिनी हाथ की मुट्ठी आगे बढ़ा दी। भूत, भविष्य और वर्तमान का ज्ञाता वह पंडित असमंजस में पड़ गया। सोच कर बोला—

"गोल·······पीली·······अंगूठी है सोने की।"

सेठ मुट्ठी बन्द किये ही हँस पड़ा जोरों से।

"हँसते क्या हो?" खिसयाया हुआ सा पंडित बोला, "हाथ खोलो न अब।"

सेठ ने कहकहा लगाया तो पान की पीक और चू पड़ी और पहले निशानों के पास कुर्ते पर एक और लम्बी लाल रेखा खिंच गई। उसके हाथ पर चाँदी का सफेद रुपया चमक रहा था। लग रहा था त्रिमूर्ति के तीनों शेर पंडित को मुँह चिढ़ा रहे हों। ज्योतिषी की पीड़ा और बढ़ गई।

"यह भीतर वाली चीज कौन बतला सकता है ? तो तुम ही बताओ !"

"अरे, मैं तेरी तरह कोई ज्योतिषी थोड़े ही हूं। पर ले यह भी ले। बांध मेरी आंख पर कपड़ा।"

औरों की भांति मैं भी अपनी सारी चिन्ताओं को भूल इस तमाशे का आनन्द लेने लगा। आंखों पर पट्टी बांध दी गई। पंडित ने मुट्ठी बंद की, सेठ ने अंगुलियों की पोरों पर कुछ हिसाब लगाया और बोला.........

"घास का तिनका" सभी आश्चर्य चकित हो गये और ज्योतिषी और भी खीझ उठा। "फिर से बताओ, उसने कहा।"

सेठ की आंखों पर पट्टी कसी गई। पंडितजी ने सेठ की पीठ की ओर से कुछ उठाया और मुट्ठी बांध ली। सेठ की अंगुलियां फिर एक बार चलीं। सभी की जिज्ञासा बढ़ रही थी। सेठ के ओठ खुले। कुछ आशा-सी हुई। समय बीत रहा था हमारी उत्सुकता तथा पंडितजी की खुशी बढ़ती जा रही थी। मैंने भी सोचा कि सेठ नहीं बतला सकेगा। पर ऐसा हुआ नहीं।

"लो खोलो हाथ, हरे कांच का टुकड़ा है।" कह कर आंख की पट्टी हटा दी। ज्योतिषी की मुट्ठी ढीली पड़ गई और हरे कांच का एक टुकड़ा गिर पड़ा जमीन पर। सेठ का ज्ञान पूर्ण था। ज्योतिषी गिड़गिड़ाया, क्षमा मांगने लगा। विजेता की सी गर्व-पूर्ण मुस्कान के साथ सेठ ने कहा, "अच्छा, अच्छा, जा यहां से।" पंडित अपना सामान उठा, जाने की तैयारी करने लगा।

"पर हां, तुम्हारे ग्रह बुरे हैं यह तो सत्य है" सेठजी मुझसे बोले।

"आप भी कोई ज्योतिषी हैं क्या ?"

"नहीं तो, मेरी तो मेरठ में कपड़े की दुकान है। हां इस ओर भी थोड़ी रुचि है।"

उनके ज्ञान से प्रभावित तो मैं पहले ही हो चुका था। मैंने पूछा "तो सेठजी १०० रुपयों से कम में ग्रह शांति नहीं हो सकेंगे क्या ?"

"अरे नहीं भाई", कह कर उसने मेरी पीठ पर हाथ रखा और बोले "पर आप रहते कहां हैं।"

मुझे अपने जाने की याद आई। घड़ी देखी तो ग्रह चक्र का एक और

चक्कर चल चुका था। गाड़ी निकले एक घण्टा हो गया था। सेठ से बातें करता हुआ आगे बढ़ा।

"नौकरी करता हूँ, मुगल सराय में। आप ही कुछ उपाय बतलाइये ताकि मैं इन कष्टों से निवारण पा सकूँ।" "चिन्ता मत करो" आश्वासन के शब्दों में वे बोले।

"मैं एक मंत्र लिख देता हूँ नित्य प्रात: पाठ किया करो। और हाँ, भाई थोड़ा तो व्यय करना ही पड़ेगा। हर मंगलवार को पाँच हफ्तों तक किसी अपाहिज सुपात्र को एक काले कम्बल का दान करो।"

"पर मंगलवार तो आज ही है सेठ जी।"

"अरे हाँ, आज ही तो मंगल है। तो आज ही से प्रारम्भ कर दो सात दिन का विलम्ब क्यों?"

उधार माँगे रुपयों का ध्यान कर मैंने विवशता प्रकट करते हुए कहा कि "यहाँ परदेश में तो इतनी व्यवस्था नहीं हो सकेगी।"

"नहीं हो सके तो सवा सात रुपये किसी भिखारी को दान करने से भी फल प्राप्त हो सकेगा।"

मैंने भी सोचा, सस्ता से सस्ता कम्बल १५ रुपयों से कम में तो नहीं आयेगा। फिर सवा सात रुपयों का दान ही अधिक ठीक रहेगा।

हम चले ही जा रहे थे कि सामने से एक लंगड़ा, लूला भिखारी आता दिखाई दिया। उसके शरीर पर जगह-जगह पट्टियाँ बँधी हुई थीं। पट्टियों पर मक्खियाँ भिनभिना कर दृश्य को और भी घिनौना बना रही थीं। उससे बढ़ कर और कौन सुपात्र होगा। सेठजी ने भी उसकी ओर इशारा कर कहा, "लो भाई, भगवान ने लेने वाला भी भेज दिया।" मैं भी इस संयोग पर प्रसन्न ही हुआ। उस भिखारी को बुला कर सवा सात रुपये दिये तो सिर से भार-सा उतर गया।

"अच्छा भाई, यह मंत्र है। और हाँ, किसी धूर्त ज्योतिषी के चक्कर में मत पड़ना" मानो सेठ का फर्ज पूरा हो गया हो। सेठ चला गया।

शाम हुई, दिन गया और जैसे-जैसे रात बढ़ी पेट ने अपने अस्तित्व का स्मरण कराना प्रारम्भ कर दिया। जेब में हाथ गया कुल दो रुपये और सत्तर

पैसे थे। टिकट भी लेना था और उदर पूर्ति भी आवश्यक थी। एक अंधेरी सी गली में सस्ता होटल मिल गया। एक कोने में कुर्सी खींचकर बैठ गया। और सोचने लगा। ग्रहकोप और उसकी शांति! सेठ के ज्ञान पर आश्चर्य भी हो रहा था। हरे कांच का टुकड़ा! पुनः सभी दृश्य साकार हो गये।

"अनायास विचारधारा को विराम-सा लग गया। सामने लैम्प के पास वाली मेज पर वही तीनों थे। हल्की रोशनी में भी उन्हें पहचानना कठिन न था। वही तीनों। धूर्त ज्योतिषी, मेरठ का सेठ और लंगड़ा भिखारी। साथ में एक १२-१४ वर्ष का एक लड़का भी था। मेज पर तीन-चार पर्स बिखरे पड़े थे जिनमें से एक मेरा ही था। कुछ रुपये पड़े थे और पास ही पड़ा था वह हरे कांच का टुकड़ा। लड़-लड़ कर चारों दिन भर की कमाई बांट रहे थे।

बूढ़े रामजी

★

मोहन चोपड़ा

★

जन्म—गुरदासपुर नगर में। विभाजन के बाद स्थाई रूप से प्राध्यापन कार्य कर रहे हैं और कुछ सालों से हिसार में बस गए हैं। अब तक पचास से ऊपर कहानियां भारत की विभिन्न सम्मानित पत्रिकाओं में स्थान पा चुकी हैं। कुछ कहानियों के प्रादेशिक भाषा में अनुवाद भी हुए हैं। तीन उपन्यास बाहें, नीड़ से आगे, और 'एक छाया और मैं' छप चुके हैं।

कालेज से लौटकर रामजी अभी लेटे ही थे कि साथ वाले बबुआ के कमरे से दबा-दबा सा शोर उठता हुआ सुनाई दिया। कुछ क्षण बाद एक उड़ती-सी भनक उनके कानों में पड़ी·········जैसे बबुआ के ट्रांसफर की बात हो। दिल को झटका-सा लगा। इतनी जल्दी ट्रांसफर कैसे? अभी बबुआ को उनके पास आए दो साल भी नहीं हुए।

टांगों को समेट कर पलंग की पीठ का सहारा लेकर बैठ गए। एकाग्र-चित्त होकर उन्होंने फिर साथ कमरे में हो रही बातों को सुनना चाहा। लगा बबुआ के साथ दो-चार दोस्त और भी हैं और ताश खेल रहे हैं। रूपा

भी वहीं बैठी होगी। क्या रूपा को बुलाकर पूछना उचित रहेगा, आवाज देने पर वह बिना एक क्षण का विलम्ब किए चली आएगी''''मगर नहीं ऐसी जल्दी क्या है ? घण्टे, पौन घण्टे की बात और है। चार बजे जब वे चाय पीने लगेंगे तब ही पूछना ठीक होगा। फिर भी वे अपनी उस मुद्रा में पलंग के साथ पीठ सटाकर बैठे नहीं रह सके। पलंग से उतर उन्होंने पांव में स्लीपर डाल लिए और खांसते हुए साथ वाले बरामदे में चले आए।

रामजी के अन्तर की परेशानी जैसे क्षण प्रति क्षण बढ़ने लगी हो। बरामदे से फिर वे अपने कमरे में लौट आए। सहज ही उनका हाथ मेज से कोई किताब उठा लेने के लिए बढ़ा।

"डैडी !" कुछ देर बाद बबुआ की आवाज सुनकर वे चौंके। किताब आंखों से हटाकर उन्होंने दरवाजे की ओर देखा।

"डैडी ! मुझे प्रोमोशन मिल गया है।" बबुआ अन्दर जाता हुआ बोला। सप्रयत्न मुस्कराते हुए उन्होंने बबुआ की ओर देखा। नजरों में जैसे टोह लेने वाली जिज्ञासा हो।

बबुआ एक क्षण तो उस दृष्टि को सह लेने में असमर्थ, कुछ डावांडोल-सा हो गया। "मगर डैडी''''''।"

"हां, हां !"

रामजी को लगा कि ट्रांसफर वाली बात सही है, नहीं तो बबुआ बात करते-करते रुक न जाता। बेहतर यही है, उन्होंने सोचा कि स्वयं उस दारुण तथ्य से पर्दा खींचकर बबुआ को उस कठिन क्षण की पीड़ा से मुक्त कर दें। उन्होंने कहा—"प्रोमोशन के साथ ट्रांसफर भी तो हुआ होगा ?"

"हां डैडी।"

"कहां का ?"

"धर्मशाला का।"

"अरे इतनी दूर''''।" कहकर चुप हो गए।

"बबुआ !" उनके होठों पर बुझी-बुझी-सी मुस्कराहट आ गई—"अगर तुम्हारे ट्रांसफर पर मुझे अफसोस हुआ है, तो तुम्हारे प्रोमोशन पर मुझे खुशी हुई है। मेरा ख्याल है अब तुझे क्लास वन का ग्रेड मिल जायेगा।"

"हां डैडी !" बबुआ ने उत्तर दिया, "अभी हमने हिसाब लगाया था तनख्वाह में पूरे डेढ़ सौ रुपयों की वृद्धि होगी।"

रामजी बोले, "जगह भी तो काफी अच्छी है। अगर हिल-स्टेशन न सही, पहाड़ तो है। यहां तो आजकल धूल और गर्मी के सिवा और कुछ नहीं।"

तभी रूपा, उनकी बहू अन्दर आई।

"बधाई हो रूपा।" रामजी बोले।

"आपको भी बधाई है डैडी।" उत्तर देते वक्त रूपा लजा रही थी।

"हां-हां, मुझे भी। बबुआ मेरा बेटा जो ठहरा।" कहकर रामजी को अनुभव हुआ जैसे मन का बोझ कुछ हल्का हो गया हो।

"डैडी ! एक क्षण बाद रूपा बोली, "आप हमारे साथ ही चलें।"

"हां डैडी, रूपा ठीक कहती है," बबुआ ने अभ्यर्थना की नजर उनकी ओर देखकर अपनी पत्नी की बात का अनुमोदन किया।

रामजी ने उत्तर दिया, "कैसे जा सकता हूं ? नौकरी है यहां। रिटायर होने में अभी दो साल और हैं।"

"आप चाहें तो कल ही रिटायरमेंट ले सकते हैं," रामजी कुछ सोचकर हंस पड़े। "अभी नहीं। अभी मेरे कुछ काम हैं। जब तक मनोहरी अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो जाता, मुझे तो नौकरी करनी पड़ेगी।"

मनोहरी का जिक्र आते ही बबुआ और रूपा के चेहरे बुझ से गए, मानो वे रामजी से अप्रिय प्रसंग सुनने को तैयार न हों। कुछ देर तक खामोशी छाई रही। फिर पहले रूपा और उसके बाद बबुआ उनके कमरे से खिसक आए।

रामजी फिर लेट गए। मनोहरी की याद दिल को कुरदने लगी। मनोहरी बिगड़ा हुआ लड़का है, फिजूल खर्च और ऐबी। बबुआ और रूपा से उसकी नहीं पटी। जब-जब भी आता है झगड़ा करके चला जाता है। पैसों की जरूरत हो तभी चिट्ठी लिखता है, वैसे बिल्कुल नहीं।

विद्दो !.........कुछ क्षण उनकी आंखों में मृत पत्नी की तस्वीर झूलने लगी, सात साल पहले की तस्वीर और हू-ब-हू वैसी की वैसी जैसे समय

का व्यवधान सिमट कर निरन्तर मुस्कराते रहने वाली, आत्मीयता भरी मुखाकृति पर स्थिर हो गया हो। मरने से पहले विद्दो कितने ही दिन बेहोश पड़ी रही थी। उसका चेहरा काला और पीला पड़ गया था और मनोहरी तो जैसे बिलख-बिलख कर पागल हो जाना चाहता था। विद्दो उसे प्यार भी बहुत करती थी।

आज वही मनोहरी, वे यह सोचकर परेशान से हो उठे, एक विशृङ्खल से युवक की तरह, वर्तमान और भविष्य दोनों से ही विमुख हो जिन्दगी से खिलवाड़ कर रहा है। इधर बबुआ भी तो है। मेहनत करके इन्जीनियर बन गया। ऊँचे घराने में शादी हो गई और पत्नी भी कितनी पढ़ी-लिखी और सलीकेदार मिली।

फिर अगले तीन दिन वे यही बातें सोचते रहे। उधर बबुआ का सामान भी बँधना शुरू हो गया था।

सामान बांधने में दफ्तर के चपरासी भी आकर बबुआ और रूपा का हाथ बटाते रहे, लेकिन सामान भी तो इतना था कि रामजी बबुआ को सीख के तौर पर कहने लगते, "इन सबकी लिस्ट बना लो बेटा। ट्रक भरवाने में आसानी रहेगी। मेरा ख्याल है यह सब एक ट्रक में नहीं जायेगा।"

"आ जायेगा डैडी।" बबुआ उत्तर देकर गम्भीर हो जाता।

फिर धीरे-धीरे बबुआ और रूपा ने अपनी जरूरत का सारा सामान बाँध लिया। ड्राइंगरूम का कश्मीरी गलीचा भी लपेट लिया गया, सोफासेट भी चौखटों में कस लिए गए, मेंटलपीस पर रखा हुआ सजावट का सामान और दीवारों पर टँगी हुई तस्वीरें भी पेटियों में बंद हो गईं, इसी तरह किचिन और डाइनिगरूम का सामान भी। जब क्राकरी को रद्दी में लपेटकर टोकरी में डाल रही थी, उसने पूछ लिया था, "डैडी, आपको जो भी चीज चाहिए, रखलें।"

"नहीं, मुझे कुछ नहीं चाहिए।" रामजी ने उत्तर दिया, "यह क्राकरी भला मेरे किस काम आएगी?"

इसी तरह जब बबुआ मेज पर खड़े हो ड्राइंगरूम में टंगी हुई नीली रोशनी की मर्करी ट्यूब उतारने लगा, उसने भी पूछ लिया था, "डैडी, अगर आप कहें तो मैं इसे लगी रहने देता हूँ।'

"हाँ डैडी !" बबुग्रा ने उत्तर दिया, "ग्रभी हमने हिसाब लगाया था तनख्वाह में पूरे डेढ़ सौ रुपयों की वृद्धि होगी।"

रामजी बोले, "जगह भी तो काफी ग्रच्छी है। ग्रगर हिल-स्टेशन न सही, पहाड़ तो है। यहाँ तो ग्राजकल धूल ग्रौर गर्मी के सिवा ग्रौर कुछ नहीं।"

तभी रूपा, उनकी बहू ग्रन्दर ग्राई।

"बधाई हो रूपा।" रामजी बोले।

"ग्रापको भी बधाई है डैडी।" उत्तर देते वक्त रूपा लजा रही थी।

"हाँ-हाँ, मुझे भी। बबुग्रा मेरा बेटा जो ठहरा।" कहकर रामजी को ग्रनुभव हुग्रा जैसे मन का बोझ कुछ हल्का हो गया हो।

"डैडी ! एक क्षण बाद रूपा बोली, "ग्राप हमारे साथ ही चलें।"

"हाँ डैडी, रूपा ठीक कहती है," बबुग्रा ने ग्रभ्यर्थना की नजर उनकी ग्रोर देखकर ग्रपनी पत्नी की बात का ग्रनुमोदन किया।

रामजी ने उत्तर दिया, "कैसे जा सकता हूँ ? नौकरी है यहाँ। रिटायर होने में ग्रभी दो साल ग्रौर हैं।"

"ग्राप चाहें तो कल ही रिटायरमेंट ले सकते हैं," रामजी कुछ सोचकर हँस पड़े। "ग्रभी नहीं। ग्रभी मेरे कुछ काम हैं। जब तक मनोहरी ग्रपने पैरों पर खड़ा नहीं हो जाता, मुझे तो नौकरी करनी पड़ेगी।"

मनोहरी का जिक्र ग्राते ही बबुग्रा ग्रौर रूपा के चेहरे बुझ से गए, मानो वे रामजी से ग्रप्रिय प्रसंग सुनने को तैयार न हों। कुछ देर तक खामोशी छाई रही। फिर पहले रूपा ग्रौर उसके बाद बबुग्रा उनके कमरे से खिसक ग्राए।

रामजी फिर लेट गए। मनोहरी की याद दिल को कुरदने लगी। मनोहरी बिगड़ा हुग्रा लड़का है, फिजूल खर्च ग्रौर ऐबी। बबुग्रा ग्रौर रूपा से उसकी नहीं पटी। जब-जब भी ग्राता है झगड़ा करके चला जाता है। पैसों की जरूरत हो तभी चिट्ठी लिखता है, वैसे बिल्कुल नहीं।

विद्दो !""""कुछ क्षण उनकी ग्राँखों में मृत पत्नी की तस्वीर झूमने लगी, सात साल पहले की तस्वीर ग्रौर हू-ब-हू वैसी की वैसी जैसे समय

का व्यवधान सिमट कर निरन्तर मुस्कराते रहने वाली, आत्मीयता भरी मुखाकृति पर स्थिर हो गया हो। मरने से पहले विद्दो कितने ही दिन बेहोश पड़ी रही थी। उसका चेहरा काला और पीला पड़ गया था और मनोहरी तो जैसे बिलख-बिलख कर पागल हो जाना चाहता था। विद्दो उसे प्यार भी बहुत करती थी।

आज वही मनोहरी, वे यह सोचकर परेशान से हो उठे, एक विशृङ्खल से युवक की तरह, वर्तमान और भविष्य दोनों से ही विमुख हो जिन्दगी से खिलवाड़ कर रहा है। इधर बबुआ भी तो है। मेहनत करके इन्जीनियर बन गया। ऊँचे घराने में शादी हो गई और पत्नी भी कितनी पढ़ी-लिखी और सलीकेदार मिली।

फिर अगले तीन दिन वे यही बातें सोचते रहे। उधर बबुआ का सामान भी बँधना शुरू हो गया था।

सामान बाँधने में दफ्तर के चपरासी भी आकर बबुआ और रूपा का हाथ बटाते रहे, लेकिन सामान भी तो इतना था कि रामजी बबुआ को सीख के तौर पर कहने लगते, "इन सबकी लिस्ट बना लो बेटा। ट्रक भरवाने में आसानी रहेगी। मेरा ख्याल है यह सब एक ट्रक में नहीं जायेगा।"

"आ जायेगा डैडी।" बबुआ उत्तर देकर गम्भीर हो जाता।

फिर धीरे-धीरे बबुआ और रूपा ने अपनी जरूरत का सारा सामान बाँध लिया। ड्राइंगरूम का कश्मीरी गलीचा भी लपेट लिया गया, सोफासेट भी चौखटों में कस लिए गए, मेंटलपीस पर रखा हुआ सजावट का सामान और दीवारों पर टंगी हुई तस्वीरें भी पेटियों में बंद हो गईं, इसी तरह किचिन और डाइनिगरूम का सामान भी। जब क्राकरी को रद्दी में लपेटकर टोकरी में डाल रही थी, उसने पूछ लिया था, "डैडी, आपको जो भी चीज चाहिए, रखलें।"

"नहीं, मुझे कुछ नहीं चाहिए।" रामजी ने उत्तर दिया, "यह क्राकरी भला मेरे किस काम आएगी?"

इसी तरह जब बबुआ मेज पर खड़े हो ड्राइंगरूम में टंगी हुई नीली रोशनी की मर्करी ट्यूब उतारने लगा, उसने भी पूछ लिया था, "डैडी, अगर आप कहें तो मैं इसे लगी रहने देता हूँ।'

"अरे नहीं, ।" रामजी ने उत्तर दिया," "तुम लोगों के चले जाने के बाद ड्राइंगरूम मेरे किस काम का ?"

उस रात रामजी की आंखों से नींद गायब थी क्योंकि अगली सुबह को चले जाना था। हवा बंद थी। कोठे के साथ ही नीचे सड़क से आ रहा शिरीष का पेड़ निश्चल, निस्पंद-सा खड़ा था और इसी तरह कुछ दूरी पर लैम्प-पोस्ट का बल्ब अपनी मटमैली रोशनी में सिमटा हुआ अजनबी-सा लग रहा था। उस रात का सन्नाटा कभी उन्हें इतना भयावह नहीं लगा था, उन्हें मनोहरी की याद आई जिसे उन्होंने कुछ दिन पहले चिट्ठी लिखी थी कि तू यहां चला आ। आने वाले दिनों का अकेलापन मुझसे बर्दाश्त नहीं होगा।

अगली सुबह वह तीन कमरों वाला, मरा-मरा-सा घर बिल्कुल खाली हो गया। बबुआ, निन्दी और रूपा को लेकर चलता बना।

अब रामजी अपने कमरे में ही उठते-बैठते हैं, सोते जागते हैं। अपनी जरूरत का सामान इसी कमरे में रखवा लिया है—एक पलंग है, स्टडीटेबल है, पूजापाठ का आसन है, कपड़ों के दो ट्रंक हैं, किताबें हैं और ऐसा ही दूसरा सामान है। एक रेडियो भी पड़ा है जिसे वे बहुत ही कम सुनते हैं। अकेला आदमी हो तो रेडियो भी अच्छा नहीं लगता।

मनोहरी की चिट्ठी आई थी। उसने अपने लौट आने का कुछ नहीं लिखा था। उसे रुपयों की जरूरत थी। वे उसने मंगवा लिये थे।

अकेलेपन के बावजूद, रामजी को लगता है, कि उनकी दिनचर्या फिर भी एक नियम से बंधी-बंधी चल रही है। सुबह उठने पर पूजापाठ होता है, कुछ अध्ययन भी........अधिक नहीं तो अपने विद्यार्थियों के लिए कुछ नोट्स वगैरह ही लिख लिए, फिर कुरता, पजामा पहना और कालेज चले गये। सीनियर प्रोफेसर जो ठहरे। ठीक तीन बजे वे घर को लौट आते हैं। कुछ देर स्टडी टेबल पर बैठकर पत्रादि लिखते हैं। इस काम से फारिग हुए तो टहलने के लिये नेहरू पार्क चले जाते हैं। वहां उनकी उम्र के दो-चार साथी आ जाते हैं। आठ, साढ़े आठ बजे वे लौट आते हैं। रात को भोजन के बजाए दूध और फल, फिर सरसरी-सा अध्ययन और कमरे में ही पंखा खुला छोड़ कर सो जाना।........बबुआ के चले जाने के बाद अब वे ऊपर कोठे पर जाकर नहीं सोते। आसपास के सन्नाटे से उन्हें हौल-सा आने लगता है।

कुछ दिनों से खांसी भी बढ़ गई है। इस कारण रात की नींद उखड़ जाती है। बड़ी मुश्किल से ही वे इसे रोक लेने में समर्थ होते हैं। सुबह उठने पर वे सोचते हैं, खांसी का इलाज करवाना चाहिए। आज कालेज के डाक्टर से पूछकर कोई दवाई ले लूंगा। पर कालेज में पहुंचकर वे दवाई लेने वाली बात अगले रोज पर टाल देते हैं। वे अपने इस संकोच को समझ नहीं पाते।

एक दिन शाम को रोजमर्रा की सैर से घर लौटने पर उन्होंने देखा कि ड्राइंगरूम की बत्ती जल रही है और अन्दर शोर भी हो रहा है। उस शोर में मनोहरी की आवाज भी है, बहकी-बहकी उखड़ी-उखड़ी सी आवाज जैसे उसने पी रखी है।

दरवाजा भिड़ा हुआ था। वे दरवाजे के बाहर ठिठके-से खड़े रहे, इसी उधेड़-बुन में कि अन्दर जाना ठीक होगा या नहीं। अन्दर से आ रही आवाजों का शोर ऐसा नहीं था जो सुनने में रुचिकर लगे। मनोहरी और उसके आवारा दोस्त बड़ी ही असभ्य और लच्चर बातें कर रहे थे। फिर उन्होंने नौकर कबीरा को किचन से निकल कर उसी ओर जाते हुए देखा। कबीरा के हाथ में प्लेट थी जिसमें आलू के तले हुए कतले पड़े थे।

"मनोहरी बाबू आ गए!" उसने तने से स्वर में जैसे मन में कहीं कुढ़न हो, सूचना दी।

"हां, आ गया नालायक!" कहकर रामजी खुलकर मुस्कराए और फिर वे अपने कमरे की ओर मुड़ गए।

यात्रा

रामगोपाल मिश्र

जन्म—सम्वत् १६४५ को बदायूं में हुआ। आप बलरामपुर निवासी हैं। सन् १६१४ ई० से आप सरकारी अधिकारी रहे हैं। 'नव ज्योति' का सम्पादन किया है। 'चन्द्र भवन, कजलिका, माया, भारत बोध, भारतोदय, तपोभूमि आदि आठ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उपन्यास, नाटक, कहानियां, आलोचना आदि सभी विधाओं में लिखा है। आजकल आप लखनऊ में निवास कर रहे हैं।

करीम गाँव के मानूंराम एक दिन सवेरे अपने जीवन की पहली रेल-यात्रा को चले। साथ में पत्नी और उनका दस वर्षीय पुत्र था। पुत्र का हाथ पकड़े पीछे-पीछे दौड़ती हुई पत्नी ने हाँफते हुए कहा—

"वाट पड़े, तुहे रेलगाड़ी हुइगया।"

मानूं बोले, "वोनो ना—वा स्टेशन है—मुदा गाड़ियां तो मानों हैन नाही........"

"तुहरे खातिर गाड़िया बैठ रही ?" स्त्री ने कहा।

"तो दौड़ो", कहके मानूंराम स्त्री और पुत्र सहित भागे।

स्टेशन पहुँच के इधर-उधर देख के मानूंराम ने पूंछा, "टिक्कस कहाँ मिली भय्या ?" एक व्यक्ति ने खिड़की की ओर संकेत कर दिया। मानूंराम ने खिड़की पर गठरी पटक दी—"टिक्कस, बाबू।"

"गठरी तो नीचे रख। कहां जायेगा ?" बाबू बोले।

"ससुरार जैबे, बाबू। ऊ मिहरिया आवत है, उहै कै नेहर।"

"स्टेशन का नाम बोल।"

"ललना कै ननसार, बाबू।"

"ललना के ननसार ?" ललना के ननसार कोई स्टेशन नहीं है।

"ई आइ गवा ललना, हमार बिटवा। इहै कै ननसार।"

"स्टेशन का नाम जान के आओ," बाबू ने कहा।

"तौ तबलै गाड़िया छोड़यो ना बाबू। हम ससुरार दौड़ के जाइत हम नाम पूछैं। मिहरिया, बिटवा, तबलौ हियें बैठ हैं।"

"हुआं पहुंचकै टिकस लेय फिर लौटिहौ ? बताय नहीं देत्यो "ढेंचूपुर" उसकी पत्नी बात काट कर बोली।

"ढेंचूपुर, बाबू, ढेंचूपुर।"

"गाड़ी में देर है, बैठ जाओ," बाबू ने कह दिया।

मानूराम चले गए। इधर-उधर घूम के फिर खिड़की पर आए—

"बाबू जहां गड़िया मिली तहीं बैठ लेबै। टिक्कस दे देऊ, बाबू।"

"रास्ते में रोक के बैठेगा ? उधर हट।" मानूराम फिर चले गए। थोड़ी देर बैठे रहे। और लोग आने लगे थे। यह खिड़की पर आके खड़े हो गये—"बाबू, इकके टिकस मां दोनों जन चला जावे ना ? मिहिरिया निराल हाड़ैमांस है बाबू। हमहू, देखलेउ, दूबरे पातर हन।"

"बड़ा गधा है, दो टिकट पड़ेंगे।"

"तौ दुइन दै देउ, बाबू।"

"ले। पीछा तो छोड़।"

मानूराम ने बड़ी मजबूत गांठ में टिकटों को बांधा, और स्त्री के पास जाके बैठ गए।

'डुग-डुग-डुग-डुग' करता हुआ एक मदारी बन्दर लिए आया। सब लोग चारों ओर घिर आए। मदारी बन्दर नचाने लगा—'डुग-डुग-डुग-डुग'—अरे कहां को चल दिए, मानू ? रूठो ना रूठो ना। मानूराम स्त्री की ओर देखने लगी—"ई तो हमरे नाउं लेत है।"

स्त्री मुस्कराई। मदारी कहे गया, "ना-ना-ना-ना, अकेले ससुराल को न जाना—हलवा पूड़ी खाने को मन है ? तुम्हारे इतने मालिक खड़े हैं—यही हलवा पूड़ी खिला देंगे—आहा हाहा—मान गये जी मान गये—लो टोपी लेके पैसे मांग लो।"

"मानू राम ने फिर स्त्री की ओर देखा—इहो सार समुरार जात है।" स्त्री फिर मुस्कराई।

मदारी कहता गया—"आहा-ओहो-टोपी लेके मांगने चले—मानू—यह तो बताओ क्या खाओगे..." यह कहके मदारी ने मानू राम की ओर देखा। यह बोल उठे "लड्डू।"

"आहा-आहा—लड्डू खाएगा, मानू। 'डुग-डुग-डुग-डुग'....." सब ओर से बन्दर की टोपी में इकन्नी दुअन्नी गिरनेलगी ? मदारी कहता गया—" 'डुग-डुग-डुग-डुग'....मालिकों ने मालामाल कर दिया—अब बेटा करतब दिखाओ।"

एक घण्टे तक मदारी ने खेल खिलाया। गाड़ी की घण्टी बजी। सब लोग अपना-अपना सामान सम्भालने लगे।

यात्रियों में गाड़ी की प्रतीक्षा में चहल-पहल मच गई। स्टेशन के एक बाबू, लोगों के बीच में से आ निकले। मानू राम के पास पहुंचे वैसे ही मानू बोले, 'दुइ ठौर टिकस लिहे हन, या देखो, बांधे हन।"

"और इस लड़के का ?" बाबू ने पूछा।

"इहो के पड़ी ? ई तो हम ही दोनों के बिटवा है", मानू राम ने कहा।

"आधा टिकट पड़ेगा", कहके बाबू चले गए।

मानू राम ने स्त्री की ओर देखा। स्त्री उन्हीं की ओर देख रही थी, झुंझला के बोली, "आग लगै अस रेल मां।"

मानू राम ने एक टिकट खोल के आधा फाड़ के लड़के को दे दिया—

"ई लेउ तू आपन।"

स्त्री ने कहा, "तुहार जोन आधै रहिगा ?"

मानू राम सोचने लगे, बोले, "कह्यो तो ठीक।"

इतने में गाड़ी आ गई। सब लोग दौड़-दौड़ के चढ़ गये।

मानूराम, मदारी और दो एक सज्जन उस डिब्बे में और चढ़े।

मानूराम एक हाथ और एक पैर गाड़ी के बाहर निकाले बैठे थे। उनकी स्त्री ने कहा, "सीधे बैठो, बाहर का टंगे हो ?"

वे बोले, "चुपान रहो, तू का जानो ? स्त्री चुप हो गई।

तभी एक टी० टी० सी० अन्दर आया। बन्दर को देखके वह भी चकराया।

"इसका टिकट है ?" मदारी से उसने पूछा।

मदारी बोला, "बन्दर का भी टिकट चाहिए ?"

"तुम क्यों गाड़ी में इसे लेके आए ?" टी० टी० सी० ने कहा।

"बेटा ! मालिक खफा हो गए, इनका चुम्मा ले ले,"

मदारी ने बन्दर से कहा। बन्दर कूद के टी० टी० सी० के कन्धे पर चढ़ गया और ज्यों ही चुम्मा लेने को मुँह बढ़ाया कि टी० टी० सी० चारों खाने चित्त जा रहे।

टी० टी० सी० का पारा चढ़ गया, उठके गरजे, "पिनैल्टी पड़ेगी, निकालो रुपया।"

मदारी सहम गया। अपनी रेजगारी की पिटारी आगे बढ़ा दी। जो सिक्का टी० टी० सी० उठायें वही खोटा।

"ऍ। तू जाली सिक्कों की तिजारत करता है ?" वे बोले।

"जाली सिक्के", का नाम सुनके एक कान्सटेबिल जो एक पटरी पर ऊँघ रहा था, सिर पर लाल साफा रखके आ पहुँचा। कुल रेजगारी देखके बोला, "बहुत दिनों से तेरी तलाश में था। आज पकड़ मिला है। सारे इलाके में तूने जाली सिक्के चला दिये हैं। सिक्के बनाता है।" मदारी को उसने बाँध लिया।

टी० टी० सी० ने औरों के टिकट देखे, मानूराम ने टिकट देके सारा ब्यौरा बता दिया, एक उनकी स्त्री का था, आधा लड़के का था, आधा उनका था, इसी से वे अपना आधा शरीर गाड़ी से बाहर निकाले थे।

टी० टी० सी० ने मानूराम से किराया और हरजाना वसूल कर लिया।

गाड़ी रुकी तो कान्सटेबिल मदारी को लेकर उतरा।

गाड़ी चल दी।

थोड़ी ही देर शान्ति रही थी कि एक बाबाजी ने अपना तम्बूरा छेड़ा—"संसार एक मेला है—कोई आता है, कोई जाता है—जीवन यात्रा वही सफल है जिसमें सत्कर्म हों—अपने राम जी ने प्रयागराज में एक भण्डारे का संकल्प किया है।"

सब लोग झुंझलाये बैठे थे। एक ने पूछा, "क्या दक्षिणा चाहिये ?"

"जो श्रद्धा हो", बाबा बोले।

"बाबा जी ! सफल यात्रा वह है जिसमें प्राणी दूसरों का शिकार होने से बच जाए, अपने मान, मर्यादा और जेब की रक्षा कर ले। हर कोई हर किसी पर ताक लगाए बैठा है। जो जितना बड़ा है उसके नेत्र उतने ही अधिक विकराल हैं।"

"यह माया है।' बाबा जी बोले।

"भण्डारे के लिये माँगना उसी माया का एक रूप है" यात्री ने कहा।

"नहीं तो, शुद्ध मन से परिश्रम कीजिए, जो मिले उससे दूसरों का भी उपकार कीजिए।" तम्बूरा बन्द हो गया। शान्ति छा गई।

और गाड़ी तेजी से पटरी पर दौड़ती रही।

चाँद रानी

कैलाश कल्पित,

जन्म तिथि—२५ जनवरी, १९२५ ई० १९५८ में भारत प्रेस, इलाहाबाद
के प्रकाशन सम्पादक। १९५९ में 'रवीन्द्र गीतांजलि' का पद्यानुवाद।
१९६० में उत्तर प्रदेश सरकार से रवीन्द्र शताब्दी समारोह के
उपलक्ष में ३००) रु० से पुरस्कृत। १९६१ में रवीन्द्र
पत्रांजलि' का सम्पादन तथा 'चारु चित्रा' उपन्यास
का प्रकाशन। १९६२ में साहित्य साधिकायें,
१९६३ में इन्द्र बेला और नागफनी'
और १९६४ में 'राख और
आग' का प्रकाशन
हुआ। आजकल
इलाहाबाद में
निवास कर
रहे हैं।

उसके असली नाम को अधिकतर लोग नहीं जानते, किन्तु 'चाँदरानी' के शब्द को सुनते ही लोगों को यह समझ लेने में देर नहीं लगती, कि चर्चा उसी गोरी, चिट्टी और सुगढ़ 'लेडीपियन' की है जो उस अट्ठारह लाख की नई इमारत में थोड़े समय पहले से काम करने लगी है।

एक दिन जमुना चपरासी से मुकुट बिहारी बाबू का गिलास टूट गया। वे इतनी जोर से गरजे थे जैसे सावन के बादल गरज उठते हैं। इतनी जोर का शोर सुनकर उनके बीच आकर खड़ी हुई थी 'चाँद रानी'। 'चाँद रानी' पर दृष्टि पड़ते ही मुकुट बिहारी न जाने क्यों ढीले पड़ कर बोले थे, "एक गिलास टूट जाना कोई बड़ी बात नहीं है लेकिन काम करने का शऊर तो सीखना ही चाहिए। जाओ गिलास के टुकड़े बाहर फेंक दो।"

बात समाप्त हो गई तो लोग अपने-अपने काम पर फिर व्यस्त हो गये। दो-तीन दिन बाद ऑफिस सुपरिन्टेण्डेण्ट ने 'चाँद रानी' को मुकुट बिहारी बाबू के सेक्शन में कार्य करने की आज्ञा दी।

थोड़ी देर बाद नजर झुकाए हुए ही बड़े बाबू बोले—"तुमने यह चपरासी की नौकरी क्यों की ? सुना है तुम्हारे पति गार्ड थे !"

"आपने ठीक ही सुना है।"

"कितने बच्चे हैं ?"

"दो।"

"पढ़ते होंगे।"

"हाँ, उन्हीं के लिये तो नौकरी कर रही हूँ।"

"तो''''तो उनका कोई अच्छा प्रबन्ध''''''?"

"क्या कहा आपने ?"

"कुछ नहीं, कुछ नहीं।"

'चाँद रानी' बड़े बाबू के मन के चोर को पकड़ चुकी थी, फिर भी वह अन्जान-सी चुप हो गई। कुछ देर बाद बड़े बाबू ने चेहरे पर हलकी-सी मुस्कान बिखेर कर कहा, "तुम कुर्सी पर नहीं बैठीं ! आओ मेरे बगल में बैठ जाओ।"

'चाँद रानी' तिनक उठीं—'आप यदि अपने सिर पर भी बिठलाएँगे तो मैं नहीं बैठूँगी।" वह कमरे के बाहर निकल गई।

जब वह देर तक नहीं लौटी तो वे धीरे से बुदबुदाए—"हरामजादी को इतना घमण्ड !"

'चाँद रानी' अपने घर पहुँच गई थी। वह सोचने लगी—कैसी अजीब है यह पुरुषों की जाति !

मैं क्या करूँ, मेरे तो समझ में ही नहीं आता।''''''''आखिर मैं किसकी-किसकी आँखों से बचूँ ? मैं चपरासिन नहीं हूँ गोया एक लौंडी हूँ, और ये सारे बाबू हैं नवाब के खानदानी। बड़े बाबू कुर्सी पर बिठलाना चाहते हैं। उस दिन बेचारे जमुना पर कितनी बुरी तरह से बिगड़े थे।

एक दिन एक व्यापारी छोटे साहब से मिलने आया। 'चांद रानी' को देख कर वह समझा कि शायद वह भी कोई आगन्तुका है।

"क्या आप भी साहब से मिलने आई हैं?"

"नहीं, आपको साहब से मिलना है क्या ?"

"हां।"

"अपना स्लिप दे दीजिए।"

व्यापारी ने अपना कार्ड दिया और उसको लेकर वह जैसे ही अन्दर पहुंची, व्यापारी को अन्दर बुला लिया गया। व्यापारी छोटे साहब का अच्छा मित्र था। बोला—

"इस बार तो आपने अपना अर्दली बहुत बांका रक्खा है।"

"हां, लेकिन यह औरत एक सिर दर्द बनी हुई है। इसे एक ही सेक्शन में रखना मुश्किल हो गया है।"

"भाग्यशाली हैं आप"

"चांद रानी" कुछ इतनी सशंकित स्वभाव की हो गई थी कि हरएक की बात कान लगाकर सुनने की आदी हो गयी थी। उसने दर्वाजे की सन्द से इन बातों को भी सुना—

"तो क्या इसे मैं अपने यहां नौकरी में ले सकता हूं ?"

"शो-रूम के काम के लिये। मेरा मतलब है सेल्स गर्ल में यह बहुत अच्छी........"

"ठीक है, ठीक है, वह जाये तो ले जाइये।"

"तो फिर आप उसे अभी यहां बुला दीजिए ना।"

छोटे साहब ने घण्टी बजा कर उसे अन्दर बुलाया और मित्र से कहा— "बात कर लीजिए।"

"आप का नाम ?" उसने तुरन्त ही प्रश्न किया।

"जी, मुझे प्रकाशवती कहते हैं।"

"आपको यदि यहां से कुछ अधिक पैसे दिए जाएं तो क्या कोई दूसरी नौकरी पसंद कीजियेगा ?"

"कौन सी, सेल्स गर्ल की ?"

"हां, हां, आपने शायद हमारी बातें सुनली हैं।"

"मुझे नहीं करनी।"

"डेढ़ सौ दूंगा, सिर्फ पांच घण्टे के लिए। तीन बजे शाम को दूकान पर पहुँच जाइए और आठ बजे छुट्टी पा जाइये।"

"सोचकर बताऊंगी, मैं साहब से कह दूंगी, आपको खबर मिल जाएगी।"

"चांद रानी" जब घर पहुँची तो सोचने लगी—

यदि मैं इस रेल की नौकरी को छोड़कर दूकान में काम करने लगूं तो क्या बुरा है ? डेढ़ सौ मिलेंगे। यहां तो १००) भी नहीं मिलते। इतने ढेर से मर्दों के बीच में घूमना पड़ता है। वहां दूकान में, एक-दो मर्द और होंगे जो मेरी ही तरह सामान बेचेंगे। यहां से तो अच्छी ही जगह होगी। लेकिन अगर यह व्यापारी "बांका अर्दली" कहने वाला ही कोई दांव दिखा गया तो ! तो, फिर मैं कहां जाऊंगी ? यहां, इस दफ्तर के लोग तो फिर भी सरकारी नौकर होने के नाते बहुत कुछ अपने दायरे में रह जाते हैं, वहां तो निर्द्वन्द्व व्यापार है। यहां तो मैंने मुकुट बिहारी जैसे बड़े बाबू को भी फटकार दिया, किन्तु, यहां से नौकरी छोड़ने के बाद यदि इस व्यापारी की ही नीयत बिगड़ जाय तो ? नहीं, नहीं मुझे सेल्स गर्ल नहीं बनना है।

"तुमने सेल्स गर्ल की नौकरी करने के बारे में क्या फैसला लिया ?"

"मैं वह काम नहीं करूंगी।"

"क्यों ? यहां की रोजमर्रा की बातों से तुम्हें छुट्टी मिल जायगी।"

"यहां, यदि भय है तो उसका निदान भी है, वहां तो........"

"कहो कहो रुक क्यों गईं ?"

"मुझे कहते हुए संकोच हो रहा है, बात यह है कि वहां तो मुझे आश्रय देने वाला व्यक्ति ही एक बवण्डर, एक तूफान दिखाई देता है।"

"आ ऽ ऽ ऽ। अच्छा जाने भी दो उस नौकरी को। लो यह आज की सारी डाक तिवारी बाबू को दे आओ। तिवारी बाबू को जानती हो ना ?"

चांद रानी चिट्ठियों की फाइल लेकर तिवारी जी के पास पहुँची।

"तिवारी जी, ये कुछ चिट्ठियां हैं, जिनमें से व्यापारियों वाली चिट्ठियों को आपको एक अलग रजिस्टर में चढ़ाना है।"

"क्यों ?"

"साहब की आज्ञा है।"

"क्या साहब की आज्ञा बाबू को मानना आवश्यक है ?"

"अजीब बात है, साहब की आज्ञा तो बाबू को माननी ही है।"

"और बाबू की आज्ञा चपरासी को माननी चाहिए।"

"मतलब ?"

"मतलब जो भी हो, प्रश्न यह है कि माननी चाहिए या नहीं ?"

"जरूर माननी चाहिए।"

"तो मैं तुमको यदि कोई आज्ञा दूं तो !"

चांद रानी ने फाइल को पटक कर कहा, "मैं जानती थी कि आप मेरे सामने किसी दिन कुछ ऐसी ही रखेंगे किन्तु आपने इतनी घुमाकर बात कही है कि········"

"नहीं, नहीं। घुमाकर बात करने की बात नहीं है, मैं तो सीधी बात करता हूं। अपने कलेजे पर हाथ रखकर कहो कि तुम्हें कभी किसी पुरुष की तड़प नहीं होती।" उसने चांदरानी की आंखों में आंखें डाल दीं।

इस बात ने चांद रानी के हृदय को छू-सा लिया। वह गूंगी होकर तिवारी की ओर देखने लगी। उसने अपने बाएं हाथ से कुछ पलों के लिए अपनी आंखें बन्द कर लीं और धीरे से वहां से खिसक चलीं।

चांद रानी के कानों में तिवारी की बात उसके घर तक गूंजती चली गई। रात को जब वह अपनी खाट पर अकेली बैठी तो उसके कान में तिवारी जी का प्रश्न फिर गूंजने लगा—"अपने कलेजे पर हाथ रखकर कहो, तुम्हें कभी किसी पुरुष की तड़प नहीं होती।········किन्तु········किन्तु मैं करूं तो क्या करूं ? मैं अपने शरीर के अंगारों पर राख जमाने का प्रयास करती हूं और यह पुरुष-समाज उसे फूंक देता है। किससे-किससे लड़ूं ?········अन्दर की लड़ाई और बाहर की लड़ाई ! और फिर यह भी तो है कि····कि यदि मैंने उसे किसी रूप में अपनाया तो दफ्तर में तीर-सी खबर उड़ जायेगी।

……"स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध भी क्या अजीब सम्बन्ध है। स्थापित करो तो मुसीबत और न करो तो मुसीबत।

"शुक्ला जी आपके लिये कुछ डाक लाई हूँ।"

"सुरेश ने डाक लेली और 'चांद रानी' को विस्मय की दृष्टि से देखने लगा।"

इस बार चांद रानी एक मुस्कान बिखेर कर सुरेश के पास से हट गयी। सुरेश के अन्दर एक आंधी-सी चलने लगी। वह सोचने लगा—इतने दिनों तक यह इतनी खिंची-सी क्यों रही? शायद इसे कोई मुझसे अच्छा पात्र नहीं मिला। लेकिन मुझमें वह कौन-सी बात है जो इतने बाबुओं में नहीं?

और इधर चांदरानी सोच रही थी—

शायद शुक्ला जी के हृदय में सचमुच मेरे लिये जगह है। वह मेरा मात्र उपभोक्ता नहीं, सही अर्थों में जीवन-साथी बन सकता है।……किन्तु उससे सम्बन्ध होने के बाद क्या वह यह सहन करेगा कि मैं यह नौकरी करती रहूँ। उसकी पत्नी के रूप में रहकर मैं दफ्तर के सैंकड़ों बाबुओं के बीच एक चपरासिन बनी रहूँ, शायद मैं स्वयं स्वीकार नहीं कर सकती। किसी को अपनाना या किसी की बनकर रहना भी टेढ़ी खीर है।

दूसरे दिन चांद रानी जब दफ्तर पहुँची तो, सुरेश शुक्ला सुबह-सुबह ही उसके पास पहुँचे और बोले—"आज हमारी डाक लेकर तुम नहीं आईं?" उसने उसकी आंखों में अपनी आंखें डालकर कुछ और भी कहा किन्तु चांद रानी ने जमीन ताक कर कहा, "अभी-अभी तो दफ्तर लगा है। आपकी डाक होगी तो अवश्य लेकर आऊँगी।"

"और यदि डाक न हुई तो?"

चांद रानी इस प्रश्न पर चुप रही, किन्तु जब सुरेश ने फिर कहा—"चुप क्यों हो बोलो ना।" तो वह मुँह फेर कर बोली—"नहीं, नहीं आऊँगी।"

"मैं तुम्हें नहीं समझ पाया। शायद औरत कभी नहीं समझी जा सकती। तुम्हारे क्रोध को समझना उतना कठिन नहीं है, जितना तुम्हारी मुस्कान को।" सुरेश वहां से तेजी के साथ चल कर अपनी कुर्सी पर आ गया।

चाँदरानी फिर कुछ चिन्ता में डूब कर सोचने लगी—सुरेश बाबू शायद बुरा मान गए। क्या मैंने मूर्खता की ? अगर मूर्खता नहीं तो धोखा देने की बात तो मुझसे हो ही गयी। परसों यदि मैं सुरेश के सामने से एक मुस्कान भरे आमन्त्रण को बिखेर कर न आती तो……तो शायद वे इतना बढ़ कर न आते। जीवन को सही और संतुलित ढंग से जी लेना भी एक समस्या, नहीं कठिन समस्या है। मेरी तो समझ में नहीं आता कब तक मैं रूखी-सूखी और सभी की तरफ शुष्क बनी रहूंगी। जीवन में प्रत्येक क्षण एक तनाव रहे यह कम परेशानी की बात नहीं। खुल कर हंसना-बोलना भी तो जीवन की एक आवश्यकता है।

कुछ दिनों बाद लोगों ने देखा चाँदरानी बिल्कुल बदलती जा रही है। १८ लाख की कोठी में वह आज भी काम करती है किन्तु पहले की चाँदरानी और अब की में बड़ा अन्तर है। केवल सुरेश से ही नहीं। आज वह सभी से, दिल खोल कर हँसती और बोलती है। खिल-खिलाकर कहकहे ही नहीं भरती ऐसी फब्तियाँ भी मन चले बाबुओं पर कस देती है कि वे बेचारे कभी-कभी कुड़बुड़ा कर ही रह जाते हैं। हाँ सुरेश शुक्ला अब चाँदरानी से भी अधिक प्रसिद्ध हो गया है क्योंकि वह चाँदरानी का एक ऐसा मित्र है जिसकी चर्चा उस इमारत में दैनिक राजनीतिक समाचारों से भी अधिक हो जाती है।

★

महमान

०

महेशचन्द्र 'सरल'

०

आपका जन्म संवत् १९७८ में हरदोई में हुआ। कविता, कहानी, एकांकी, उपन्यास आदि की १७ पुस्तकें प्रकाशित हैं। ढाई सौ से ऊपर रचनायें पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं, साहित्यसृजन के साथ संगीत से विशेष रुचि है।

पचासों नौकर सारे बँगले को सजाने और महमानों के ठहरने के प्रबन्ध में लगे थे। बराबर के मैदान में कई टेन्ट लगा दिये गये थे और सामने दो पँडाल बनाये गये थे। एक में महमानों का स्वागत कर बिठाना था और दूसरे में दावत का प्रबन्ध था। दावत भी दो-तीन तरह की थी। कट्टर हिन्दुओं के लिए फल-मिठाई आदि थी। निरामिषों के लिए कचौड़ी, साग, चटनी, रायता, मिठाई आदि थी और सामिषों के लिए मटन, पुलाव, नान, मुतंजन और मुर्ग आदि था। खाँ साहब जिले के सबसे ऊँचे अफसरों में से एक थे, इसलिए किसी चीज की कमी न हो और किसी को शिकायत न हो, इसका विशेष ध्यान रक्खा गया था।

कुछ लोगों को एक तरफ भाग दौड़ करते देख कर खाँ साहब की बेगम साहिबा ने पूछा—"यहाँ क्या हो रहा है?"

प्रबन्धक ने बताया—"जी, महमानों के मन-बहलाव के लिये आतिशबाजी मँगाई गई है, उसे लगाया जा रहा है।"

"ठीक है, लेकिन गाना-वाना.......?"

"जी, उसका भी पूरा इन्तजाम है।" प्रबन्धक ने उनकी बात पूरी होने के पहले ही अपनी कार्य-पटुता का परिचय दे दिया।

"वेलडन", कह कर वे हवा में सेन्ट की खुशबू उड़ाती अन्दर चली गईं।

खां साहब के तीन लड़कियां थीं। इस जिले में आने के बाद लड़का होने के उपलक्ष्य में जिले के सारे अफसरों, नेताओं और चुने हुए नागरिकों की दावत का आयोजन किया गया था। खां साहब मुरादाबाद जिले के रहने वाले थे। वहां से भी सारे सम्बन्धियों को बुलाया गया था। वैसे बेगम साहबा उन लोगों को नहीं बुलाना चाहती थीं, इसलिए कि वे लोग गरीब और नीचे दरजे के छोटा पेशा करने वाले लोग थे। खां साहब ने कहा था—"अरे, कहने को होगा कि बड़े अफसर क्या हो गये, नाता-रिश्ता भी तोड़ दिया? एक बार वे भी आकर देख लेंगे कि हम लोग क्या हैं, कैसे रहते हैं? और यकीन जानो, उनमें से इतना किराया खर्च करके आयेगा भी कौन?"

बेगम साहिबा ने खां साहब की बात मान ली थी।

सवेरे से ही रेलवे स्टेशन पर आठ-दस मोटरें भेज दी गईं। एक छोटा सरकारी अफसर हर गाड़ीको देखता और खां साहब के मेहमानों को ले आता। मुरादाबाद की तरफ से आखिरी गाड़ी शाम को आती थी। उस दिन कुछ देर से भी आई। उसमें से लम्बी दाढ़ी वाले, फटे-पुराने जूते और गाढ़े के कपड़े पहने, बगल में दरी का बिस्तर और पुरानी दबी-पिचकी टीन की सन्दूकची दबाये पांच-छः लोग और इतनी ही औरतें पुराने और मैले बुर्के ओढ़े उतरीं। उनकी जूतियां सट-सट हो रही थीं और पाजामे, जो बाहर से दिखाई देते थे, काफी गन्दे थे। उनके साथ मैले कपड़े पहने बच्चे भी थे।

मेहमानों का स्वागत करने वाले अफसर ने उनकी ओर ध्यान भी न दिया। भला खां साहब के ऐसे मेहमान हो सकते हैं? वह उस गाड़ी से किसी अच्छी स्थिति के व्यक्ति को न उतरता देख कर मोटर में बैठ कर चला गया।

उन मेहमानों ने बाहर आकर खां साहब के बंगले के लिए किराये के तांगे किए। वहां पहुंच कर वे लोग भौंचक्के से रह गये। उन्हें पहचानने वाला वहां कोई न था। पचासों चपरासी और छोटे-बड़े अफसर इधर-उधर भाग-

दौड़ रहे थे। बिजली के प्रकाश से सारा बँगला, पँडाल, मैदान सभी कुछ जगमगा रहा था। उनकी किसी से कुछ पूछने की हिम्मत ही न हो रही थी।

तभी औरतों में से एक ने देखा—बेगम साहिबा किसी से कुछ कहने बाहर आई हैं। उसने उन्हें पहचान लिया। वह पुरुषों से बोली—"आप लोग यहीं ठहरें। हम सब अन्दर जाती हैं। अभी ठहरने का इन्तजाम हुआ जाता है। यही तो थीं·········बेगम।" और वे सब बंगले के भीतर घुस गईं।

बेगम साहिबा अत्यन्त व्यस्त थीं। उड़ती-सी दृष्टि उस दल पर डालती हुई बोलीं—"कौन हैं आप लोग? इस वक्त कैसे आ गईं? मुझे तो बात करने की भी फुरसत नहीं है।"

उन्होंने बुर्कों से अपना मुँह खोल लिया। उनमें से एक वृद्धा ने उत्तर दिया—"·········बेगम, हम लोगों को शायद पहचाना नहीं आपने? मुरादाबाद से अभी आ रहे हैं। बँगले के बाहर मर्द खड़े हैं। आज······।"

बेगम साहिबा के पास जज साहब की पत्नी खड़ी थीं। वे उन महमानों को घूर रही थीं, जैसे कह रही हों—"वाहरे! खाँ साहब के महमान, क्या बात है?"

बेगम साहिबा को लगा कि जैसे उनका सर कट गया हो। ऊँचे अफसरों की बीबियाँ क्या कहेंगी? खाँ साहब ने मुरादाबाद वालों को बुलाकर अपनी तो क्या, उनकी नाक कटवा दी। वे क्या करें, कुछ समझ नहीं सकीं। उनकी खुशी का मूड एकदम बदल गया।

महमान औरतों ने फिर भी बुरा न माना। उनमें से दूसरी ने अपनापन जताते हुए कहा—"बरसों बाद आज देखा है इसीलिए पहचानने में मुश्किल पड़ी आपको। मैं बताती हूँ—ये हैं फरहत की बू बू, और वह उधर करीम की मा, ये मेरे पास कल्लन की फूफी खड़ी हैं, सबसे पीछे बड़ी बी और मैं········· अनवर की······।"

"बस रहम कीजिये"—बेगम साहिबा ने खीझ कर उसे बीच ही में रोक दिया। इस वंशावली से वे परेशान हो गई थीं। "आप लोग ऐसे ही आई हैं क्या?" उन्होंने कुछ रुक कर पूछा।

"जी नहीं, हमारे पास बिस्तर-सन्दूकची भी हैं जो बाहर मर्दों के पास हैं।" बड़ी बी ने तत्परता से उत्तर दिया।

"आप लोगों के लिये कहीं बाहर इन्तजाम कराती हूँ" कहकर बेगम साहिबा जैसे ही बरामदे में पहुँची उन्होंने देखा उन औरतों के साथ आये छहों व्यक्ति खाँ साहब को घेरे खड़े हैं। उनकी बगल में दरी के विस्तर हैं और दूसरे हाथ में सन्दूकची लटकी है।

बेगम साहिबा को वैसे भी गुस्सा सवार था, अब और भी बढ़ गया। वहीं से बेताबी से बोलीं—"ऐ महमानवाज ! खुदा के लिये मेरे हाल पर रहम फरमाइए। अपने इन महमानों के लिये········।"

और खाँ साहब कुछ कह सकें कि मोटर से उतर कर एक दूसरे ऊँचे अफसर ने उनके पास आकर कहा—"अरे ! आप आज भी इन लोगों की फरियादें सुन रहे हैं। इसे कल पर रखिये।" फिर उन महमानों से बोले—"जाओ भाई, कल-वल आना। आज तो इन्हें तंग न करो। खाँ साहब तो वैसे भी हर समय सबकी बातें सुनते हैं। आज देखो न, दावत होने जा रही है। सैकड़ों आदमी दौड़ रहे हैं। जाओ, चलो।" और वे कुछ और कहने-सुनने का अवसर न देकर खाँ साहब का हाथ पकड़ कर एक ओर घसीट ले गये।

बँगले के अन्दर महमान औरतें और बँगले के बाहर मेहमान मर्द—चारों ओर शोर-गुल और शहनाई की स्वर-लहरी और बड़े लोगों के छोटे रिश्तेदारों की मनोव्यथा।

ग़ैर

■

मलखानसिंह सिसौदिया

○

आप १९४३ ई० से अब तक बराबर बीमारी से लोहा
ले रहे हैं। रचनाकाल १९४२ ई० है। अ० स० आर्य
इण्टर कॉलेज, एटा में प्रधानाचार्य हैं। जिला
स्काउट कमिश्नर भी हैं। रचनायें अनेक
पत्रों तथा साहित्य संकलनों में संक-
लित हुई हैं। 'अंगार फूल
और आँसू' आपका
प्रकाशित कविता-
संग्रह है।

●

"अम्मी, मोती!"

कहकर चार साल की बच्ची रमज़ानी अपने माँ के कन्धे से लिपटकर उसका दामन खींचने लगी।

"दूर, मरभुखी, तेरे पेट में कितना झोंका जाय। घड़ी-घड़ी पर भूख। तभी तो अल्लाह का कहर इन्सान पर टूट रहा है। अभी तो ठोर बैठकर दो रोटियाँ खा गई थी। चल चल, अब शाम को मिलेगी।"

वह जान-बूझकर झूठ बोल रही थी। बच्ची ने सवेरे आधी रोटी का कलेवा किया था। उससे कुछ देर खटोले पर बैठा हुआ उसका पति हबीब भी इस बात को अच्छी तरह जानता था। लेकिन वह भी सुनकर अनसुनी कर रहा था, हबीब के अन्दर का पिता और पति तथा उसकी पत्नी के अन्दर की माँ और पत्नी दोनों मर चुकी थीं। वे दोनों एक दूसरे के साथ तथा

औलाद के साथ चाल चल रहे थे। इसका कारण यह था कि उसका पुरुषत्व मर चुका था। बल्कि एक हफ्ते से दंगों के सबब से वह तांगा नहीं चला पा रहा था। चार दिन तो बिल्कुल करफ्यू हटा ही नहीं। उसके बाद भी जब हटा तो फिर वारदातें, फिर वही हालत। हिन्दू, मुसलमान एक दूसरे के खून के प्यासे हो रहे थे।

पत्नी की उस संगदिली के लिये हबीब अपने को जिम्मेदार मानता था। अब वह जरूर तांगा ले जायगा। वह बाप भी क्या जो बैठे हुए बच्चे को भूख से छटपटाता देखता रहे।

"सुनती हो, कल तांगा जोतने का इरादा है।"

बीवी चौंक पड़ी, जैसे बिच्छू ने डंक मार दिया हो। बोली "खुदा के वास्ते ऐसी मनहूस बातें मुंह से न निकालो। देखते हो सारे शहर में आग लग रही है। मैं तुम्हें उसमें न कूदने दूंगी। जान है तो जहान है। पहले मेरे सीने में छुरी भोंक दो तब जाने पाओगे।"

"इस तरह चूड़ियां पहनकर घर में कब तक बैठा जाय। इस गढ़े को तो भरना ही पड़ेगा।"

"………ओह ! मेरी तो रूह कांप उठती है। तुम्हें मेरे सर की कसम! ऐसी बात मुंह से न निकालो। तुम्हारे पैरों पड़ती हूं।" और यह कहते-कहते वह रुआंसी हो आयी।

"तुम्हीं सोचो, देखो, इस घोड़ी की क्या हालत हो रही है। खुदा न करे, लेकिन सांई के सौ ख्याल, काश इसको कुछ हो गया तब तो हम बेमौत मर जायेंगे। इधर तुम्हारी चीज भी नहीं छूट पायी है। और फिर क्या रमजानी को तुम यों भूख से छटपटाती देख सकोगी।"

पत्नी गम्भीर हो गई उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था।

सरकारी करफ्यू तो बारह घंटों के लिए हटा लिया गया था, लेकिन उसके हटते ही प्रकृति ने अपना करफ्यू लगा दिया। मानों निश्चिन्त बाहर निकलते लोगों से कह रही थी, नहीं; अभी घरों में ही रहो। अभी हिन्दू, मुसलमानों की खून की प्यास बुझी नहीं है।

हबीब को लग रहा था कि जैसे इंसान-इंसान के बीच के सारे सम्बन्ध नष्ट हो चुके हैं। केवल हत्या और लूट ही उनका मजहब बन गया था। नफरत ने मुहब्बत का खून कर दिया था।

हबीब आंधी, पानी की परवाह न कर तांगा जोतकर घर से निकल पड़ा। जब वह तांगा जोत रहा था तो पत्नी छाया की तरह उसके पीछे पीछे फिरती रही थी आंखों में आंसू भरे! लेकिन उसने उसकी तरफ देखा भी न था, डर था कि शायद कहीं उनको देखकर वह रुक न जाय। पुरुष का साहस बड़े-बड़े नदी-नाले और रुकावटों के पहाड़ तक लांघ जाता है, लेकिन नारी के चन्द आंसुओं की रेखा भी उसके लिये लक्ष्मण की रेखा की तरह अलंघ्य हो जाती है।

अपने विचारों की अभेद्य बरसाती से उसे मौसम की खराबी का कुछ भी भान न हुआ। जब मुसाफिरखाने से तीन हिन्दू यात्रियों ने उसे 'ओ तांगेवाले' कहकर आवाज दी तो वह जैसे गहरी नींद से जाग पड़ा हो। उसने चारों तरफ देखा, स्टेशन पर उसके सिवाय और कोई इक्का या तांगा नहीं था।

उन यात्रियों में से एक ने पूछा—"नौबस्ता चलोगे!" हबीब को ऐसा लगा जैसे मौत ने आकर उससे मजाक किया हो। वह सहम गया। वह मोहल्ला ही तो दंगों का प्रधान केन्द्र था। हाय रे पेट!.........और वह बोला—"चलूंगा बाबूजी। आइए बैठिये।"

"पहले बतलाओ, क्या लोगे?"

"चार रुपये देना, बाबूजी, कुछ ज्यादा थोड़े ही ले लूंगा आपसे।"

"नहीं सिर्फ तीन रुपये मिलेंगे। चलना हो तो चलो, नहीं तो रहने दो।"

"बाबूजी, जरा वक्त देखिये, मौत के घर चल रहा हूं पेट की खातिर ही। बाल-बच्चों के लिये.........वह रुक गया। दीनता किस लिये, क्या ये लोग उसकी मदद करेंगे। जब अपनी ही कौम के लोग ठुकराने लगे तो इनका क्या भरोसा। वह बोला चलिये बाबूजी, जो मर्जी हो दे देना।"

लेकिन उसने देखा कि उनमें से एक मुसाफिर उसके चेहरे को बड़ी गौर से देख रहा था। वह अपने अन्य दो साथियों से बोला—"अरे भाई क्यों एक

रुपये पर झंझट करते हो। देखते नहीं हो बेचारा किसी मजबूरी से ही ऐसे मौसम में तांगा लाया है। वरना कोई भी मुसलमान, उस इलाके में किसी किराये पर तांगा नहीं ले जायगा।"

तीनों मुसाफिर तांगे में आकर बैठ गये। एक मुसाफिर उसके पास आकर बैठ गया।

घोड़ी को रास के इशारे से सड़क पर डालकर अपने उन्हीं विचारों में मग्न हो गया। गरीबों का वह अपमान आज रह-रह-कर उसमें चिकोटियां ले रहा था। क्या पेट के खातिर उसे भी गुन्डा बनना पड़ेगा ? क्या उन दंगों के बीच उनसे दूर रह कर अपनी रोजी चलायी न जा सकेगी। जिनके पास पैसा है, जो घर में बैठकर खर्च कर सकते हैं वे आपस में लड़ें मरें लेकिन उस जैसे लोगों को तो बख्श दें। भूखी रमजानी की याद से उसके दिल में छुरी-सी चुभ जाती थी। उसे जल्दी पड़ी थी कि कब घर वापस पहुंचे।

इतने में ही कोई पन्द्रह मिनट बाद एक गली के नुक्कड़ पर पशु-बुद्धि को कुछ खतरे का आभास मिला और अचानक ही रुक गया। हबीब के विचारों की शृङ्खला टूट गयी। उसने चौंक कर चारों ओर देखा कहीं भी कुछ नहीं था। उसने रास को झटक कर घोड़ी को एक हल्का-सा कोड़ा जमाया। लेकिन वह फिर भी सड़क पर टापों का शब्द कर वहीं की वहीं खड़ी रही। हबीब को अचरज हो रहा था, उसकी घोड़ी आज तक कभी अड़ी न थी। पास बैठा हुआ मुसाफिर बोला—"मालूम होता है अड़ती है।" हबीब बोला, "कैसे कहूं बाबूजी, आज यह पहला अवसर है।" यह कहकर उसने इस बार जरा गुस्से से जोर का कोड़ा जमाया। लेकिन घोड़ी फिर भी वहीं पर उछल-कूदकर पीछे और दांये-बांये हट गयी ; आगे न बढ़ी।

हबीब पुनः बोला, "क्या कहूं बाबूजी, आज चार दिन से बेचारी को दाना घास नहीं मिला। इसलिये यह सब है। वरना एक ही घोड़ी थी।" यह कह कर उसने उसे प्यार से पुचकारा, कूल्हों को थपथपाया और फिर थोड़ी देर रुक 'बेटा, कह कर रास का झटका दिया। इस बार घोड़ी आगे बढ़ी किन्तु बहुत ही अनिच्छापूर्वक कान खड़े किये, इधर उधर देखती हुई।

वहीं एक मुसाफिर हबीब में कुछ दिलचस्पी लेते हुए पूछने लगा, "क्यों भाई, क्या बात है। चार दिन से भूखी क्यों रखी।"

"बाबूजी अपने चलते थोड़े ही भूखी रखता हूँ। आज हफ्ते भर बाद तांगा चला पा रहा हूँ। तीन फाके करने के बाद। इन दंगों में हमारे जैसे रोज खाने कमाने वालों की तो मौत है.........।"

"खबरदार! रुक जाओ' की आवाज के साथ अचानक ही दस बारह आदमी कपड़ों से चेहरे ढके गली से निकल कर तांगा घेर कर खड़े हो गये। उनकी सिर्फ आँखें ही खुली हुई थीं जिनमें हिंसा की मसालें जल रही थीं। एक ने फुर्ती से घोड़ी की रास पकड़ ली और दूसरे ने हबीब के सिर पर एक मोटा-सा सोटा जमाया।'

यह सब घटना पलक मारते ही घट गयी। हबीब का आधा वाक्य उसके मुँह में ही रह गया। उसने असहाय दीनतापूर्ण दृष्टि से चारों ओर देखा। किसी की आँखों में उसे करुणा का लेशमात्र भी आभास न मिला। जैसे सब के सब उसके खून के प्यासे हों। हार कर उसने अपनी निराश मर्मवेधी दृष्टि पास बैठे मुसाफिर की ओर फेरी।

उस मुसाफिर से हबीब की वह चितवन देखी न गयी उसने उसके सिर पर दोनों हाथ फैलाकर उसे अपनी गोद में बच्चे की तरह बचाना चाहा। सोटे का आधा वार उसके हाथों पर और आधा हबीब के सिर पर पड़ा। मुसाफिर की कुहनियों के जोड़ खुल गये। और हबीब के सिर से खून की धारा बह चली। अन्य दो मुसाफिर भी अपने साथी को बचाने की कोशिश करने लगे। वह चिल्लाया, "भाइयो, सोचो, क्या कर रहे हो, ठहरो।"

लेकिन इतने ही में उन आदमियों ने तीनों मुसाफिरों को तांगे के बाहर घसीट लिया। गुस्से भरी आवाज उठी, "गैर को बचाना चाहते हो।" और बेहोश होते हुए हबीब की आँखों ने एक चमकती चीज अपने गले की तरफ बिजली की तरह कौंधती देखी, ठण्डा स्पर्श मालूम हुआ और फिर.........।

भरपूर सोटे का वार खाकर घबड़ाई हुई घोड़ी अपनी कमजोरी को भूलकर तांगा लिये सड़क पर भागी जा रही थी। सारा शहर उसका छाना हुआ था। घर का रास्ता और थान वह खूब पहचानती थी। वह राह देखती पत्नी के सामने मुँह से झाग डालती और हाँफती जाकर खड़ी हो गयी। पत्नी ने तांगे में एक बिना सिर की लाश देखी और रमजानी को छाती से चिपकाये चीख मारकर कटे पेड़ की तरह धड़ाम से धरती पर गिर पड़ी।

अधूरी साधना

○

उमाशंकर मिश्र 'सत्यार्थी'

○

जन्म तिथि—२२-४-१६२६ ई० और जन्मस्थान अमौना (देवरिया) उत्तर प्रदेश है। जीविका पत्रकारिता है। आजकल आप उप सम्पादक केन्द्रीय स्वास्थ्य शिक्षा ब्यूरो, नई दिल्ली में कार्यरत हैं। साहित्य की सभी विधाओं में लिखा है 'स्वस्थ भारत' आपकी प्रकाशित पुस्तक है। पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त अनेक संकलनों में रचनायें संकलित हैं।

●

थोड़ी देर तक खांसने के बाद पंडित रामभरोसे त्रिपाठी बोले—"तुम विज्ञान पढ़ते हो न, इसीलिए कहते हो कि प्रत्यक्ष के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। तुम्हारी धारणा है कि प्रत्यक्ष के अतिरिक्त जो भी अनुभव होता है वह व्यक्तिगत कोरी कल्पना होती है अथवा कोई ऐसा रहस्य जिस तक साधारण मनुष्य पहुंच ही नहीं सकता परन्तु तुम भूलते हो। गुरु और ज्ञान से सभी कुछ सम्भव है।"

श्रोता युवक कुछ बोला नहीं। पण्डित जी ने गम्भीर वाणी में कहा—"मुझी को देखो मैं तो एक बहुत ही साधारण व्यक्ति हूं, तुमसे कम पढ़ा-लिखा लेकिन यह संयोग की ही बात थी कि मैं उस्ताद से मिल गया और एक महापुरुष और त्रिकालदर्शी गिना जाने लगा था।"

सामने बैठे युवक ने इस बार बड़ी उत्कंठा से पूछा—"कौन उस्ताद पण्डित जी ?" पंडितजी ने श्रद्धा और आदर के साथ अपनी गर्दन आकाश की ओर उठाकर हाथ जोड़ दिए और ठण्डी सांस लेते हुए जवाब दिया—"मैं उन्हें उस्ताद ही कहता हूँ। बेनजीर भी उन्हें उस्ताद ही कहती थी।........"

फिर कुछ रुक कर बोले—"........उन दिनों मैं गोरखपुर के दिलजाकपुर मुहल्ले में रहता था। एक दिन की बात है कि मैं राजघाट वाली सड़क पर टहलते-टहलते बहुत आगे निकल आया था। मेरे हाथ में एक लोटा भी था जिसे मैंने नदी से जल लाने के लिए ले लिया था। मैं देखता क्या हूँ कि एक लम्बे कद का व्यक्ति काफी लम्बा कुर्ता और ऊँचा पायजामा पहने मिट्टी के ढेले फेंकता हुआ मेरे निकट आ रहा था। पहले तो मैं डरा परन्तु उसका अपने आप बड़बड़ाना और बहुत ही हल्के हाथों सम्भाल कर ढेला फेंकना देख कर मैंने समझा वह कोई पागल है। सोचा वह अपनी राह चला जायेगा लेकिन वह व्यक्ति मेरे पास आकर बोला—"शायद तुम्हीं हो जिस पर मैं भरोसा कर सकूँगा। तुम मुझे अपना दोस्त समझो। देखो तुम्हारी नौकरी अभी बन्दोबस्त के दफ्तर में लगेगी नहीं। कल जो तुम्हारे घर से चिट्ठी आई है उसमें बच्चे की बीमारी का हाल पढ़कर तुम चिन्तित हो पर वह तो ठीक हो गया है। तुम उसकी चिन्ता न करो।......"

जानते हो उस समय मुझे कितना आश्चर्य हुआ जब उसने ऐसी बात बतला दीं जो मेरे अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं जानता था। उनकी बात से ऐसा नहीं लगा जैसे मैं उनका कोई पुराना उन्होंने अयोध्या चलने का प्रस्ताव रखा तो मैं बिना हिचक के तैयार हो गया।

स्टेशन पर जब पहुँचा तो वहाँ बड़ी भीड़ थी। मैंने कहा—टिकट घर पर तो बड़ी भीड़ है। वे मुस्कराकर बोले—कोई बात नहीं वह तो पहले ही प्रबन्ध हो गया था; लो ये दोनों टिकट अपने पास ही रखो। मैं हतप्रभ सा उनकी ओर देखता रह गया। उन दिनों यदि 'एडवान्स बुकिंग' की प्रथा होती तो शायद मुझे आश्चर्य न होता।

मनिकापुर स्टेशन से उतर कर हम लोग पैदल ही अयोध्या की ओर चल पड़े। वहाँ से लगभग ५-६ मील इधर ही बहुत बड़ा पीपल का वृक्ष था। रात काफी हो चुकी थी। उस्ताद बोले—"राम भरोसे आज रात यहीं गुजार देंगे।

सवेरे अयोध्या चलेंगे।" मैंने उनका प्रस्ताव मान तो लिया, किन्तु मेरे मन में अब पूर्ण विश्वास हो गया था कि उस वीरान सड़क के किनारे हम लोगों को रात भर भूखों मरना ही पड़ेगा।

'अभी हम लोग बैठे ही थे कि एक गाड़ी चर्रमर्र-चर्रमर्र करती हुई उसी पेड़ के नीचे आकर रुकी। उस पर से चार-पाँच आदमी नीचे उतर आये और कालीन गलीचा वगैरह बिछाने लगे। हम और उस्ताद मसनद का सहारा लेकर बैठ गए। तभी साजिन्दों ने तबलास रंगी वगैरह सम्भालना शुरू कर दिया और एक नर्तकी सामने आकर मुगल जमाने के अदब के साथ सलाम पेश करती हुई उस्ताद के सामने बैठ गई।

थोड़ी देर बाद मैंने देखा कि पकवान भरे थाल आ गए और हम सब लोगों ने भरपूर भोजन किया। नर्तकी दर्द भरे स्वर में अलाप उठी—

"एरी मैं तो प्रेम दिवानी मेरा दर्द न जाने कोय।
घायल की गति घायल जाने और न जाने कोय॥....."

साज बजते रहे, गीत एक के बाद एक बदलते रहे। उसके अन्तिम गीत के बोल थे—"जन्म-जन्म से भटक रही तोरे कारण ओ निर्मोही—गीत पूरा करते ही वह बड़े अदब से झुककर बोली—"हुजूर अभी कब तक और भटकना होगा?"

उस्ताद बोले—"यही हमारे इम्तहान का वक्त है। जब तक हम दोनों स्वरूप नहीं हो जाते यूँ ही भटकना पड़ेगा। देखो यह मेरा दोस्त है। तुम्हें इसके हाथों सौंप रहा हूँ फिलहाल तीन साल के लिए। अभी इसकी परीक्षा लेनी है कि यह तुम्हें अधिक परेशान तो नहीं करता। तीन साल पूरे होने के बाद तुम्हें मुस्तकिल तौर पर इसे सौंप कर मैं फिर अपनी साधना में जुट जाऊँगा।"

........लेकिन तुम हिम्मत न हारना, मेरी साधना पूरी होगी—मुहब्बत हमेशा नाकामयाब न रहेगी, हम जरूर मिलेंगे।

फिर उस्ताद ने मुझे समझाते हुए कहा—"देखो इसे तुम्हें सौंप रहा हूँ लेकिन याद रखना यह मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय है। बारह बजे तक जो भी तुम्हारे सामने आयेगा; उसके मन की बात और उसके प्रश्न का उत्तर

तुम्हें यह बता दिया करेगी लेकिन देखो धन के लोभ में तुम इसे परेशान न करना। हां यदि कभी कोई ऐसी कठिनाई आये कि यह न बता सके तो तुम एक बोतल शराब मंगा कर किसी अंधेरी कोठरी में रखकर उस पर एक अंडा काट देना। दूसरे दिन सवाल करने वाले को बुला लेना—सही जवाब इसके जरिये मिल जायेगा।"

नर्तकी उठ खड़ी हुई उसके साथ आए हुए साजिन्दे भी सलाम करके उठ खड़े हुए। कालीन, गलीचे वगैरह बैलगाड़ी पर रखे और बैलगाड़ी चूं-चरंमरं की ध्वनि करती हुई विलीन हो गई। हम दोनों घाट की ओर चल पड़े। पक्षियों का कलरव उस समय कुछ नवीन सदेश दे रहा था और मैं अनेक प्रकार की शंकाओं में डूबा यंत्रवत् चला जा रहा था।

अयोध्या पहुंच कर मंदिरों के दर्शन और तीर्थ की परिक्रमा करने के पश्चात् हम लोग गोरखपुर वापस आ गये। जानते हो उस्ताद ने क्या कहा था उस वक्त जब मैं गांव आने के लिए तैयार हुआ? वे बोले—"बेनजीर तुम्हें सौंपी है पर खबरदार वह मेरी अमानत है, उसे कोई कष्ट न हो। तीन साल बाद २१ नवम्बर को गोरखनाथ मंदिर के पिछवाड़े मैदान में मुझसे मिलना। तभी इसका मुस्तकिल इन्तजाम कर दूंगा।

उस्ताद से विदा लेकर मैं गांव आ गया। मेरी प्रतिष्ठा फैली। दूर-दूर से लोग आने लगे। मैं सिद्ध पुरुष और त्रिकालदर्शी समझा जाने लगा।

बड़े-बड़े स्थानों से लोग आने लगे। एक दिन जब तमकुही के राजकुमार अपने यहां चोरी गई एक बहुमूल्य दुर्लभ घड़ी और हीरे के हार के बारे में पूछने आए तो मैं बहुत परेशान हुआ। बड़ा ध्यान लगाया, उस्ताद को याद किया पर बेनजीर न दिखलाई दी एकाएक मुझे ध्यान आया कि नवम्बर की २४ तारीख हो गई थी। मेरा माथा ठनका—मुझे उस्ताद से अपना वादा याद आ गया। मैंने तुरन्त गोरखपुर के लिये प्रस्थान कर दिया।

गोरखनाथ के मंदिर के पीछे मैदान में पहुंचा तो वहां बड़ी भीड़ लगी हुई थी। पुलिस का पहरा पड़ा हुआ था। लोग एक लाश को चारों ओर से घेरे खड़े थे। शायद पुलिस ने शनाख्त के लिए लाश को वहीं रख छोड़ा था। मुझे पहचानते देर न लगी, पर मैं चुप रहा। लोगों से पूछने पर पता चला

कि रामभरोसे, रामभरोसे कहकर जोर-जोर से पिछले तीन दिनों से मृत व्यक्ति पुकारते और टहलते रहे। कभी-कभी रुककर कहते थे—यहीं मिलने को कहा था २१ तारीख को, पर अब तो २३ भी बीत चली। फिर ऐसा लगता जैसे वह किसी औरत से कहते हों—बेनजीर तुम्हारा क्या होगा? रामभरोसे आखिर नहीं आया। मेरी साधना फिर अधूरी रह जायेगी। मैं दूसरा जन्म लेकर भी अब तुम्हें अपना न सकूँगा। इतनी सब बातें वह किसी स्त्री को सम्बोधन करके बोलते पर वहाँ कोई स्त्री दिखलाई न देती।

मैंने किसी से कुछ कहा नहीं न यही बतलाया कि मैं ही रामभरोसे हूँ जिसकी प्रतीक्षा करते-करते उस्ताद ने प्राण त्याग दिये थे। लेकिन मैं चौंका। बेनजीर की आकृति एक किनारे लोगों की भीड़ से दूर खिसकती हुई दिखलाई दी। मैं जब उसके पास पहुँचा तो उसने व्यंग भरी झिड़की के साथ कहा—"तो तुम आ गये? तुम्हारी एक छोटी-सी भूल ने हम दोनों को कहीं का न रखा। खूब दोस्ती निभाई? चले जाओ यहाँ से। खबरदार, मुझे छूना नहीं, स्वार्थी........।"

"मैं उस दिन तो चला आया पर मेरे मन में अनेक प्रकार की शंकायें उस्ताद और बेनजीर के अस्तित्व के बारे में उठतीं। बहुत-सी अटकल लगाता—तर्क-वितर्क करता, परन्तु सब बेकार। उस्ताद की मृत्यु के बाद फिर मैंने खेती-बारी सम्भाली और घर-गृहस्थी के झंझटों में फँस गया। लगभग ३०-३५ वर्ष बीत गये। मुझे न बेनजीर दिखलाई दी और न उस्ताद का स्वप्न में ही दर्शन हुआ।

पंडित जी ने अपनी कथा का तारतम्य बनाते हुये कहा—"पिछली बार जब मैं लड़के से मिलने जिस ट्रेन से कलकत्ता जा रहा था वह रास्ते में दुर्घटनाग्रस्त हो गई। मैं पिछले डिब्बे में बैठा था। गाड़ी रुकते ही उतर आया। लोगों की चीख-पुकार सुनकर उन्हें निकालने का प्रयास किया जाने लगा। फर्स्ट क्लास से एक महिला के कराहने की आवाज आ रही थी। भीतर घुसते ही मैं स्तब्ध रह गया। उस्ताद के रंग रूप के एक धनाढ्य व्यक्ति खून से लथपथ मरे पड़े थे और पास ही एक अतीव सुन्दर युवती दम तोड़ रही थी। उसने पानी माँगा। मैं झपटकर गिलास में पानी लाया परन्तु उसने विस्मय भरी कातर दृष्टि से मुझे देखा और दम तोड़ दिया। उसका मुँह दूसरी ओर घूम गया।

गौर से जो मैंने उसके मुँह की ओर देखा तो मैं मूर्तिवत् हो ठगा-सा देखता ही रह गया। वही नाक-नक्शा, वही कोमलता, वही आकर्षण जो पहले कभी उस्ताद के साथ मैंने उस नर्तकी में देखा था।

मैं चुपचाप वहाँ से हट आया, आखिर यह कैसा संयोग मैं कुछ समझ नहीं पाया। बूढ़े रामभरोसे का गला भर आया और आँसू की बूँदें टप-टप धरती पर गिर पड़ीं।

युवक ठगा-सा देखता रह गया। पण्डितजी सम्भल कर अपने आँसू पोंछते हुये बोले—"तुम्हीं बतलाओ इसे क्या कहोगे—स्वप्न या सत्य? तुम्हारा विज्ञान इसे क्या मानेगा—मेरा भ्रम या केवल संयोग की बात? मैं इसे दो प्रेमियों की अपूर्ण साधना मानता हूँ पर मेरा विश्वास है सच्ची लगन और साधना कभी विफल नहीं होती। गोसाईं जी ने ठीक ही कहा है—जेहि पर जेहि कर सत्य सनेहू, सो तेहि मिलहि न कछु संदेहू।"

उस श्रोता युवक की आँखें डबडबा आई थीं। शायद उसका मर्म-स्थल चोट खा चुका था। वह एक भ्रम के वशीभूत होता जा रहा था। बार-बार सोच रहा था कहीं उसकी प्रेमिका बेनज़ीर ही तो नहीं? तो क्या वह अधूरी साधना........।

पोस्टरों की साजिश

०

सोमदेव

०

जन्म तिथि—५-३-१६३४ ई० (मातृ-भाषा-मैथिली) चानोबाइ (उपन्यास) लाल-ऐशिया (कविता-संग्रह) 'सामान्य-ज्ञान' आदि आपकी प्रकाशित पुस्तकें हैं। पटना से कई पुस्तकें यथा शीघ्र प्रकाशित हो रही हैं। साहित्य की सभी विधाओं में लिखा है। पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशन होता रहता है। अभिनय, भ्रमण और राजनीति-चर्चा में विशेष रुचि है।

●

चार कोने, चार राहें।

एक बारात गुजरने को है। दूर से बाजे-गाजे की आवाज आक्रमण कर रही है।

बिसाती की दूकान से लगे ऊँटने जब एक दूसरे ऊँट को बारात में आते देखा, खुशी से लहलहाकर पूरा खिल उठा।

बारात वाले ऊँट ने भी दूकान वाले ऊँट को देखा और गम खाए लीडर की तरह मुस्कराता रहा।

दूकानवाला ऊँट बलबलाया—"अजी ओ बिरादराने-वतन कहाँ से आना हुआ आपका ? बड़ी खुशी हुई। अब यहीं के हो रहिए। अरब न हुआ तो क्या ? भई हम तो अब यहीं के होकर रह रहे हैं। यहाँ के लोग हमपर सवारी नहीं गाँठते, हमें बारात की शोभा समझते हैं।"

बारातवाला ऊँट इस परिचय-प्रश्न से ऊब उठा। उसने जवाबी हमला किया, "मेरे पाक-ओ-साफ दोस्त ऐसा नहीं कहते। या रब ! यह गुनाह !

यह तो घोड़े-हाथियों-गदहों और कुत्तों की मातृभूमि है ! और अपने यहाँ गदहे कहाँ ?"

बिसाती वाले ऊँट ने मजाक के लहजे में उत्तर दिया, "जा जा, बड़ा ग्रन्थी और ज्ञानी बनने चला है ! रहो जौन से देश में, करो तौन व्यौहार........"

बरात वाला ऊँट कड़वे स्वर से बोला, "बुजुर्ग और रहनुमाओं के आगे भी तहजीब नहीं ! गद्दारे वतन ! मल्कुल मौत का कहर बरपा हो तेरे जैसों पर ! !"

बिसाती वाला ऊँट भी बिगड़ खड़ा हुआ, "पहले अपने सवार तो सँभाल बेटे ! देख साईस भी इसी देश का है, और कोड़े मार रहा है तेरी कूबर पर। मैं तो इसी चुनाव में चेयरमेन होकर रहूँगा। नेशनलिस्ट ऊँट होकर रहने में यही तो फायदे हैं। तू क्या जाने इसके मजे ?

बरात वाले ऊँट ने शुतुर्मुर्ग की तरह अपनी गरदन घुमायी, मुर्गे की तरह एक वजनी गाली दी और घिसटता हुआ चल दिया। तब तक कोड़े भी काफी पड़ चुके थे। लेकिन साम्प्रदायिक सपने की मधुरता के सामने विज्ञान की तेज से तेज रोशनी भी फीकी पड़ जाती है, और सिकुड़ कर एक ताबीजी अंगूठी में बंद की जा सकती है।

बारात आगे गुजर गयी। ऊँट को बोलना लग गया था। वह लगातार तकरीर किए जा रहा था, प्यारे भाइयो यदि आप अपनी सही खिदमत चाहते हैं तो अपने ही बक्से में वोट दें ! आपका अपना बक्सा नेशनलिस्ट ऊँट का बक्सा है। आपका असली सेवक, आपके द्वारा आपका चुना हुआ सच्चा प्रतिनिधि हो सकता है। दूसरे सभी लफ्फाज और निहायत कमीन........"

पान की दूकान से घोड़ा जोरों से हिनहिनाया, "जिसके शरीर पर कूवड़ ही कूबड़ हों, उस अष्टावक्र के दिल में क्रिकेट का मैदान होगा—इसकी गारण्टी कौन कर सकता है ? इसलिये दोस्तो, आप यदि अपनी नगरपालिका को दरअसल तेज तन्दुरुस्त कदमों से चलाना चाहते हैं तो एक बार मुझे अवसर देकर देख लें !"

उल्लू कमल से यह सब नहीं सुना गया। "मेरे हमराही अजीज दोस्तो ! उम्मीद करता हूँ, नहीं विश्वास रखता हूँ कि आपको कभी भी गुमराह नहीं

किया जा सकता। आपमें से न तो ऐसा कोई आँख का ऊंचा है और न गांठ का पूरा ही, जो इन चने-चुरमुरे बेचने वालों की बात में आ जायें। मुझे कुछ नहीं कहना, और न सफाई देना है, केवल इतनी ही याद दिलाना है कि मैं अनादि-अनंत काल से आपका सेवक रहा हूं, और आज भी आप सभी को अपना ही यजमान समझता हूं। राज्य पिता ने मरते वक्त मुझे ही अपना वरद-पुत्र बनाया था।"

इधर गजेन्द्राचार्य ने एक जोर की चिंघार मारी कि पृथ्वी का कलेजा धक् धक् करने लगा, "अरे वाह री लफ्फाजी ! चोरी भी और सीनाजोरी भी ? अजी साहब, वाह ! आपका तो जबसे शासन हुआ, हम जमीन वाले बे-जमीन हो गये। मिलवाले बिलबिला रहे हैं। हमारी जनता कंगाल हुई जा रही है।.......किन्तु, हम लोग इस तरह लुट जाना नहीं चाहते।

द्वार पर खड़े गर्दभराज से ये दलीलें और गाली-गलौज न देखे गये। उसने वहीं से अपनी रेंक लगाई, "तुम सभी के सभी गधे हो ! सफेदपोश कुत्तों की जमात ! वोट हम किसी को नहीं देंगे। हम इन्डीपेन्डेंट कैन्डीडेट को ही अपना निर्दलीय नेता चुनेंगे....कोई पार्टी नहीं। पार्टी-विहीन शासन ! आप पार्टी वाले लोग अपना-अपना मुंह लेकर लौट जाएँ। क्यों भाइयो ?"

"हां, हां गर्दभराज ठीक कहते हैं !"

भीड़ में एक नेतानीजी मुस्कराती आगे बढ़ीं और गर्दभराज का गला विजयमाला से सुशोभित हो गया।

शाम होने को आयी। सुअर के मुंह की तरह लगने वाले लाउडस्पीकर ने फिर जाज संगीत छोड़ दिया। विविध भारती और सीलोन की तरंगें उठने लगीं। "अपना हाथ जगन्नाथ........अपना हाथ !" और राजकुमार ने अपना दायां हाथ उठा लिया, जैसे बगलगीर ऐक्टरों की रहनुमाई कर रहा हो। इतने में एक अधनंगी गुजरिया ने साढ़े सात सौ रुपये से सजाये अपने पपोटों को बड़ी अदा से उठाया और एक तीखा बाण राजकुमार की ओर फेंका, 'जिन्दगी भर नहीं भूलेंगे वो बरसात की रात....."

राजकुमार ने कहा—"अभी तो बरसात नहीं है। चौदहवीं का चांद उग आया है।" और उसने गाना शुरू किया—"चौदहवीं का चांद हो....."

दूर सिनेमाघर का लाउडस्पीकर चिल्ला उठा—"हल्ला गुल्ला ला-इला ....हल्ला गुल्ला !" दीवार पर सभी आकृतियां अपने-अपने प्रदर्शन में व्यस्त हो गयीं। अपनी-अपनी डफली, अपना-अपना हंगामा।

तभी पूरब से बीसवीं सदी के कुछ प्रगतिशील सन्यासियों की जमात चौराहे पर आ लगी। उन्होंने सिनेमा के उन पोस्टरों को जिन्दा नर-नारियों की तरह नाचते-गाते देखा। उस अधनंगी गुजरिया को कटाक्ष करते देखा तो जले हुए दूध की तरह भभक उठे। दुर्वासा की तरह कांपने लगे।

और एक्टरों को मालूम पड़ा, सचमुच चांदनी ढंक गयी है। प्रलय का दिन आ गया है। और उस सामूहिक-अहिंसक हत्या के साथ-साथ एक संस्कृत का कलमा पढ़ते जाते हैं—"जय जगत ! सर्वम् शांति....!"

ऐक्टरों की ऐसी दुर्गति देख घोड़ा, हाथी, ऊंट और उल्लू कहकहों में डूब गये..." ऐक्टरी का जमाना लद रहा है साले ! अब तो नेतागिरी का जमाना है। आठों घी में...." और इन्हें भी आपस में गुफ्तगू करते देखकर प्रलय के देवता ने अपना झाड़ू उन पर भी फिरा दिया।

और बीच चौराहे पर अभी भी झगड़ रहे उन चरण-चर्चित गलित-दलित ऐक्टरों और नेताओं के बीच से सर उठाकर गजेन्द्राचार्य ने अपना आखिरी कलाम फरमाया—"प्रलय पीड़ित प्यारे भाइयो ! अपनी स्थिति का ज्ञान हमें आज भी तो होना चाहिये। सच्चाई पर परदा डालने का ठेका उठाकर हमने भला नहीं किया। यह काम तो दर असल आदमी के बच्चों का है।"

सभी ने अपने-अपने सर हिलाये।

गजेन्द्राचार्य ने आगे कहा—"कहिए हमारी बात जंची ! यदि हां, तो सही मानी में आप सभी अभी भी मेरी लीडरशिप में आ जाएं...."

एक गंदी ऐक्ट्रेस की बाहों में बुढ़मस में रसमग्न होते हुए उलूकमल ही-ही-ही-ही करने लगे और कहा—"सभी तुम्हारी लीडरशिप में आ जाएं ? ....क्योंकि हम लोग बेजान और भोले.भाले मामूली पोस्टर हैं।"

परिवर्तन

प्रवीण नायक

आपकी जन्म-तिथि—१ मार्च, १९३७ ई० है। वर्तमान में आप महाकोशल कला महाविद्यालय, जबलपुर में हिंदी के प्राध्यापक हैं। पत्र-पत्रिकाओं में अनेक लेख और कहानियाँ प्रकाशित हैं। 'यशपाल का औपन्यासिकशिल्प' आपकी प्रकाशित पुस्तक है।

विवश हूँ। बहुत चाहता हूँ अतीत की स्मृतियाँ मेरे साथ बचपना न करें, पर हठीली स्मृतियाँ उतनी ही उभर आती हैं और जब जब 'रक्षा-बंधन' आता है तो लगता है—वीणा अवश्य आयेगी, लोचन पथ निहार निहार थक जाते हैं, स्मृतियाँ मचल-मचल कर शांत हो जाती हैं, पर वह नहीं आती। केवल उसकी एक धुंधली आकृति स्मृति-पटल पर अपना अस्तित्व बनाने लगती है—जब बाल चपलता के वशीभूत हो उसने मुझे स्नेह के पुनीत धागों में बाँध लिया था—और जिसकी अमिट आकृति अनायास ही मेरी आत्मा पर अंकित हो गई थी। मुझे स्मृति है राखी बाँधते समय उसने कहा था—

"सुनील ! आज से वीणा तुम्हारी बन गई है। ईश्वर के दिये हुये अभाव को मैंने पूर्ण कर दिया।"

मेरे हृदय ने वीणा की सद्भावनाओं का स्वागत किया। भेंट स्वरूप मैंने रक्षा का वचन दिया। 'सगी बहिन' और 'बनाई बहिन' के स्नेह में क्या

अंतर होता है यह मैं नही जानता। जानना भी नहीं चाहता। मेरे लिये केवल यही पर्याप्त था कि उसने मुझे भाई माना। अनेक बार यह पर्व आया। वीणा ने स्नेह के पुनीत धागे बांधे। मैंने बंधवाये, पर कहीं कोई परिवर्तन नही। सब कुछ अपरिवर्तित था।

अचानक यौवन, बचपन की दीवारें फांदता हुआ वीणा और मुझ तक आ पहुँचा। यौवन जीवन की एक अनिवार्य और नैसर्गिक आवश्यकता है। एक आवश्यक परिवर्तन है। किन्तु इससे हमारे सम्बन्ध भी परिवर्तित हो जायें, यह अनिवार्य नहीं। सोचता हूं वीणा वही है जो बचपन में थी। मैं वही हूं।

अनुभूतियों और उसकी अभिव्यक्ति में इतना परिवर्तन क्यों ? क्या यौवनागमन इसलिए हो रहा है कि वह हृदय में तूफान उत्पन्न कर उसकी समस्त सद्-प्रवृत्तियों को कुंठाओं में परिवर्तित कर दें। वीणा के हृदय में भी कुछ ऐसे ही तूफान उठ रहे थे। कुछ ऐसी ही कुंठायें जागृत हो रही थीं। और एक दिन जब उसने कहा—

"सुनील ! बचपन में मनुष्य अनेक बचपने करता है। मेरा तुम्हें राखी बांधना भी एक बचपना ही था। एक खेल था। विस्मृत कर दो उस खेल को। भूल जाओ बचपन की उन बातों को।"

—तो लगा जैसे वीणा पागल हो गई है। समझ न सका उसके शब्दों को, समझ न सका उसकी भावनाओं के इस अनायास परिवर्तन को।

धीरे-धीरे समय ने सब कुछ समझा दिया। मिलने पर वह मुझे यों देखते मानों मैं कोई प्रेम करने की वस्तु होऊं। अनेक बार मुझे आभासित हुआ जैसे उसके मृगलोचन अपनी पलकों में समेटकर मेरा आलिंगन करना चाहते हों। उसके अधर कुछ ऐसा संकेत करते जिसे मैं नहीं समझना चाहता था। यदि कुछ चाहता था तो केवल इतना कि वीणा अपने स्नेह को पुनीत रखे। पर ये विचारानुभूति केवल मेरी ही थी। उसकी नहीं। यदि होती तो एक दिन वह यह सब कहने का साहस न करती—

"भाई होने और बनने में महान अंतर है सुनील। होने में ईश्वर का हाथ है और बनने, बनाने में मनुष्य की भावनाओं का। अपने बनाये को मनुष्य

इच्छानुसार तोड़ भी सकता है । तुम मन को कुछ ऐसे भा गये हो कि मैं भी बचपने में बांधे इन धागों को तोड़ डालना चाहती हूं, तुम्हें चाहती हूं ।"

मैंने सुना तो हृदय स्तब्ध रह गया । लगा जैसे वीणा का कहा हुआ एक-एक शब्द बिच्छू बन अपनी मात्राओं के डंक मुझे मार रहा है । भावावेश में मैं चीख पड़ा—"वीणा ! वीणा ! जानती हो वीणा तुम यौवनाओं में क्या कह गईं ? जो एक बहन को नहीं कहना चाहिये, जो एक भाई को नहीं सुनना चाहिये । मैं सगा न सही, तुम सगी न सही, पर इससे क्या ? बचपन में जो धागे मेरी आत्मा को बांध चुके हैं—उन्हें कैसे काटा जा सकता है ? काटने का अर्थ मेरी आत्मा को कुचलना है, और आत्मा को कुचलने का अर्थ मेरी भावनाओं के अस्तित्व को मिटाना है । पर मैं वासना पर जीवित रहने वाला कीड़ा मात्र नहीं । तुमसे दो अभावों की पूर्ति भी नहीं चाहता । यदि कुछ चाहता हूं तो केवल उतना कि तुम्हारे अंतर में हो रहे द्वन्द से तुम्हारी रक्षा कर सकूं । शायद कभी मैंने इसका वचन भी दिया था ।

रक्षा बंधन के अनेक वर्ष आये और चले गये । सोचता हूं वीणा इस बार राखी बांधने अवश्य आयेगी । प्रतीक्षा करता हूं । पर प्रतीक्षा धीरे-धीरे निराशा में परिवर्तित हो जाती है ! क्योंकि वह नहीं आई । राखी भी नहीं आई, न आये । पर बचपन में अनायास ही मेरी आत्मा पर अंकित हो जाने वाली बहिन की आकृति को विकृत करने में वह असमर्थ है । काल भी असमर्थ है और उसका यौवन भी । अच्छा है असमर्थ ही रहे क्योंकि समर्थ होने का अर्थ मुझे मिटाना है । इस पर्व को मिटाना है ।

भूखा सूरज

०

गुरुबचन सिंह

०

रचनायें हिन्दी के प्रतिष्ठित पत्रों में समय-समय पर प्रकाशित होती
रहती हैं। अब तक लगभग डेढ़ सौ कहानियाँ लिख चुके हैं।
'युग और देवता' 'नीम की निबोलियाँ' 'सर्वगंधा'
'मेंहदी के फूल' आदि आपकी प्रकाशित
पुस्तकें हैं। शीघ्र ही कई कृतियाँ प्रकाशित
हो रही हैं। आजकल आप लोहे
और कोयले की दुनिया
जमशेदपुर में सृजन
कर रहे हैं।

●

सामने शाल के पेड़ों से घिरा हुआ मिशन का सेनीटोरियम जैसे उदास सा खड़ा था। और वातावरण में भी गहरी उदासी छाई हुई थी। दोपहर ढलने लगी थी और घाटियों में सांझ का-सा झुटपटा घिरने लगा था।

ऐलिस, दीदी के साथ में लकड़ी के एक बेंच पर बैठा हुआ था। उन्होंने मेरा सिर अपनी गोद में ले लिया था। मेरा रोने को जी चाह रहा था। ऐलिस दीदी के आंचल में मुंह छिपाकर जाने आज तक कितनी बार रोया हूं। ऐलिस दीदी अब नर्स का पहनावा छोड़ कर मरीजों का लिबास पहनने लगी थीं। याद है एक बार उन्होंने मुझे भूखे सूरज की कहानी सुनाई थी। शायद भूखा सूरज उन्हें गरस रहा था।

कहते हैं सूरज एक पुरुष था। जो चन्द्रमा, यानी अपनी स्त्री पर बिगड़ गया था, और उसने उसे छील-छीलकर खाना प्रारम्भ कर दिया था। और वह तब तक उसे खाता ही रहा जब तक कि चन्द्रमा ने अपने प्राणों का भिक्षा नहीं मांगी।

"लेकिन दीदी.......!" उसे तो उसका सूरज अब भी खाए जा रहा था। वह उससे प्राणों की भिक्षा क्यों नहीं मांग रही थी ?

आज फिर ऐलिस दीदी से फिर वही कहानी सुनने को मन कर रहा था। कुछ कहने का साहस नहीं हो रहा था।

हिम्मत करके हौले से बोला—"एक बार तुमने मुझे भूखे सूरज की कहानी सुनाई थी न !"

वह कुछ सोच कर बोली—"हां वह जो सूरज चन्द्रमा को छील-छीलकर खाया करता था, उसकी न !

"हां ! वह कहानी मुझे अभी तक याद है।"

'अच्छा !" वे किसी सोच में डूब गईं।"

मैं एकटक उनके मुंह की ओर देखता रहा। फिर बोला—"चन्द्रमा के याचना करने पर सूरज ने उसे छोड़ दिया था न दीदी।"

वे कुछ संभल कर बोलीं—"मैं वह तो कहानी भूल गई हूं पाल ! ठीक से कुछ याद नहीं।"

"मैं सुनाऊं !"

"नहीं ! जा अब तू घर जा।" वह बैंच पर से उठ खड़ी हुई।

सेनिटोरियम के घड़ियाल ने दो घंटियां बजायीं। घंटी का स्वर घाटी में पलाश वन की शून्यता में दूर तक बिखर गया। घर पहुंचते-पहुंचते मुझे रात हो जाया करती थी। इसीलिये दीदी मुझे जल्दी जाने को कह रही थी।

मैं बोला—"दीदी कल मैं फिर आऊंगा।"

"नहीं तू मत आना। बाबा को भेज देना।"

"बाबा अकेले कैसे आयेंगे ?"

"अरे हां !" दीदी को अपनी भूल का अहसास हुआ। बाबा भला कैसे आ सकते हैं। अंधी आंखों से वे ऊबड़-खाबड़ रास्ते और नदी नालों को पार

कर वो कैसे आ सकते हैं। दीदी दूर उन गांव के हेवलों को देखने लगीं जो आंधी धून में डूबने से लगे थे।

वे कुछ क्षण उस ओर देखती ही रहीं। फिर बोलीं—"नहीं पाल, बाबा को यहां मत लाना।"

"अच्छा !" मैं सेनीटोरियम के अहाते से बाहर निकलने लगा।

"अरे हां !" मुझे टोक कर वे बोलीं "उस दयाल का क्या हाल है ?"

मुझे इस नाम से चिढ़ और घृणा सी हो गई थी मुंह बना कर बोला—"मैं कुछ नहीं जानता।"

'घर नहीं आया कभी ?'

"नहीं ! आयेगा तो भी नहीं घुसने दूंगा। बाबा उसे जान से मार डालेंगे।"

उनके चेहरे पर की उदासी गहरी हो गई। वे बोलीं—"जा अब !"

मैं भारी मन लिये, वहां से घर की ओर हो लिया।

'दयाल।' एक नाम मेरे कानों में गूंज ही रहा था। मैं आज तक समझ नहीं पाया कि दीदी को दयाल क्यों याद आता है ? वे उसे भूल क्यों नहीं जातीं ?

फादर टाम्स हमारे गांव के गिरजे के पादरी थे। बाबा उसी गिरजे के बगीचे में माली का काम करते थे। फादर टाम्स काफी बूढ़े थे। उन्होंने अपनी जिन्दगी लोगों का जीवन बनाने और उनकी सेवा में बितायी थी। बच्चे उन्हें बहुत प्रिय थे। उनमें एक दयाल भी था। दयाल को एक अच्छा इन्सान बनाने का उन्होंने प्रण ले रखा था। सुना था उसे बचपन ही से अनेकों बुरी आदतें थीं। एक बार लोग जब उसे जान ही से मार डालना चाहते थे, तब फादर टाम्स ने उसकी रक्षा की थी। फादर टाम्स उसके आचार व्यवहार से पूर्णतः सन्तुष्ट नहीं थे। वे दिन रात यही सोचते रहते थे कि अपनी हार को जीत में कैसे बदलें।

फादर टाम्स को एलिस दीदी भी बहुत प्यारी थीं। वे भी उनके निकट थीं। बाबा गिरजा घर के पुराने सेवक थे और हम भाई-बहिन

मातृहीन। क्योंकि हमारी माँ बचपन ही में मर गईं थीं। इसलिये फादर टाम्स हमारे प्रति और भी करुण थे। ऐलिस दीदी को फादर टाम्स ने ही पढ़ाया था।

एक दिन फादर टाम्स ऐलिस दीदी को अपने पास बैठा कर बहुत कुछ समझाते रहे। फिर उन्होंने दयाल को भी बुलाया। उन्हें कुछ समझाते रहे। फिर बाबा को बुला कर उन्होंने कुछ मशवरा किया।

बाबा के मुँह से सुना ऐलिस दीदी का दयाल से विवाह होगा। मैंने यह बात अपने साथियों को बताई। और उनसे यह बात घर-घर में फैल गई।

रात के समय में मैं दीदी के निकट चारपाई पर लेटा उनसे पूछ रहा था—दीदी! "क्या सचमुच तुम्हारा ब्याह होगा?" वे चुप रहीं।

"मुझे बाबा ने सब बता दिया है।"

"क्या बताया है?"

"कि तुम्हारा दयाल भैया से विवाह होगा।"

और मैंने देखा वे गहरे सोच में डूब गईं।

जब से दीदी रांची से लौट कर आई थीं, बड़ी खामोश तबियत की हो गईं थीं। जरूरत से अधिक नहीं बोलती थीं। लेकिन जब उनका ब्याह हो गया तो वे और भी गम्भीर हो गई थीं।

जब से दीदी का विवाह हुआ था, दयाल हमारे यहां ही रहने लगा था। उसने बड़ी चिड़चिड़ी तबियत पाई थी। हमेशा किसी न किसी बात से दीदी से झगड़ता। खाने पीने के मामले में बेपरवाही बरतता फादर टाम्स का अनुशासन से अब उस पर से कम हो गया था। इसलिये वह यार दोस्तों के साथ दोपहर बाद जंगल की ओर निकल जाता है और सांझ को बहुत देर से घर लौटता। उसके मुँह से हड्डियां और शराब की बू आती। दीदी को इन बातों से घृणा थी। वे बहुत दुखी रहतीं।

दयाल दीदी को तंग करता, 'चल यहां से कहीं और चले चलें। यहां क्या रखा है। फादर टाम्स के पास रहने से जिन्दगी को कोई मजा नहीं है।'

दीदी को उसकी बातों से बहुत दुख होता।

एक दिन इसी बात को लेकर खूब झगड़ा।

दीदी फादर टाम्स के पास जाकर खूब रोईं। फादर को भी दयाल की हरकतों पर बहुत दुख हुआ। वे सोच न पाए कि दीदी को क्या आश्वासन दें।

इन सब बातों से बाबा भी बहुत चिंतित थे। दीदी का दुख उनसे देखा नहीं जाता था। दयाल पर उन्हें बहुत गुस्सा आता था। लेकिन फादर टाम्स का ख्याल कर कुछ नहीं बोलते थे। किन्तु एक दिन उनका सबर जाता रहा। वे दयाल पर उसकी हरकतों के कारण बहुत बिगड़े।

दयाल घर छोड़कर पास के एक दूसरे गांव में चला गया। फादर टाम्स उसे मनाकर लौटा लाने के लिये गए। पर वह नहीं आया। उसने कहा, ऐलिस दीदी उसके पास यहां आकर रहे।

बाबा सोचने लगे, शायद उन्होंने ऐसा करके भूल की है। एक दिन वे स्वयं दयाल को मनाने गए। पर वह नहीं आया। दीदी बहुत रोईं। उसी दिन उन्होंने प्रथम बार मुझे भूखे सूरज की कहानी सुनाई थी।

कहते हैं सूरज एक पुरुष था। जो चन्द्रमा से बिगड़ गया और उसे छील-छील कर खाना प्रारम्भ कर दिया। और तब तक खाता रहा जब तक कि चन्द्रमा ने प्राणों की भिक्षा नहीं मांगी।

इसे सुनते-सुनते मुझे नींद आ गई थी।

एक दिन दीदी और मैं गिरजाघर में प्रार्थना कर रहे थे। दीदी होले-होले प्रार्थना के बोल गुनगुना रही थीं। मैं घुटनों के बल बैठा आंखें मूंदे प्रार्थना सुन रहा था। जब प्रार्थना समाप्त हुई और दीदी बाहर आने के लिए मुड़ीं तो सामने किसी युवक को खड़ा देख वे तनिक चौंकी। फिर कुछ सँभल कर वे मुस्कराईं—"टिर्की तुम !"

"हां ऐलिस !"

"कब आए ?"

"आए तो हफ्ता हो गया।"

"कहां ठहरे हो ?"

"जंगल में।"

"जंगल में ! यह क्या कह रहे हो ?" दीदी को आश्चर्य हुआ।

"हाँ जंगल में नौकरी लगी है न, ।" वह मुस्करा के बोला ।

"आओ चलो मैं तुम्हें बाबा से मिलाऊँ ।"

हम सब गिरजाघर से बाहर निकल आए । बाबा गिरजा के अहाते के मैदान में घास छील रहे थे ।

दीदी बाबा के पास जाकर बोलीं—"देखो बाबा कौन आया है ?" बाबा आश्चर्य से टिर्की की ओर देखने लगे ।

दीदी बोलीं—"टिर्की है यह । मैंने बताया था न । राँची में मेरे साथ पढ़ा करता था ।"

बाबा अपने सीधे-साधे स्वभाव के कारण उससे मिल कर बहुत खुश हुए । शुभ समाचार पूछा । फिर उसे रात के खाने पर घर में आने को कहा ।

उस दिन रात को दीदी ने भी खाना बड़े चाव से बनाया । अंडे, मुर्गी और सब्जी भी पकी ।

खाना खा चुकने के बाद टिर्की और दीदी गिरजा घर के सामने वाले बैंच पर बैठे बहुत देर तक बातें करते रहे । जब वे लौट कर आईं तो मैं सो चुका था ।

उस दिन से टिर्की रोज ही दीदी से मिलने आने लगा । कभी सवेरे कभी शाम । सवेरे के समय वे चर्च के अहाते में टहलते रहे । शाम को गाँव के जंगल की ओर निकल जाते । जब लौटते तो अँधेरा झुकने को होता ।

एक दिन शाम को मैं भी जंगल की ओर जहाँ हमारा एक छोटा सा कब्रिस्तान था, उनके साथ घूमने गया । जब हम वापस घर लौट रहे थे तो अचानक गाँव के छोर पर दयाल दिखाई दिया । वह दीदी को बुरी तरह घूर रहा था । ऐलिस दीदी उसे देखकर चौंकी । फिर अपने आपको संभालती हुई टिर्की से बोलीं—"आओ तुम्हें दयाल से मिलाऊँ ।" वे उन्हें दयाल के पास ले गईं । और बोली "ये हैं मेरे मित्र टिर्की । मेरे साथ रांची में पढ़ा करते थे । और टिर्की ये हैं मेरे पति दयाल जी ।"

दयाल ने गौर से टिर्की की ओर देखा और फिर दीदी से "बोला तुमसे एक बात है ऐलिस । जरा सुनो ! ' उसने दीदी को एक ओर आने का इशारा किया ।

दीदी बोलीं—"घर चलो न । वही जो कुछ कहना होगा कहना ।"

"नहीं, सुनना है तो यहीं सुनो ।" कहता हुआ वह एक ओर चला गया ।

कुछ क्षण दीदी उसे जाता देखती रहीं । फिर वह भी उसके पीछे होलीं । कुछ देर बाद अकेली लौटीं । उदास और गमगीन सी । उनका मुँह लटका हुआ था ।

"टिर्की ने पूछा क्या दयाल चला गया ?"

"दीदी बोलीं—हां !"

"बड़ा अजीब आदमी लगा ।"

"वह शुरू से ही ऐसा है ।"

फिर हम खामोश से गांव की ओर लौट चले । घर पहुँचते-पहुंचते रात उतर चुकी थी ।

टिर्की, हमें पहुँचा कर वापस अपने ठिकाने की ओर जाने लगा, तो दीदी से बोला—"एक बात पूछने को मन करता है ।"

दीदी बोलीं—"क्या है पूछो ?"

"दयाल को तुम पहले से नहीं जानती थीं क्या ?"

"लेकिन तुम ऐसा क्यों पूछ रहे हो ?"

"ऐसे ही पूछ लिया ।" टिर्की जाने लगा ।

"सुनो !" दीदी उसे रोक कर बोली—"फादर टाम्स कहा करते हैं, यदि हम किसी व्यक्ति को अपना कुछ देकर, उसे संभालने, बनाने और उसके मन में स्नेह करुणा, और प्यार की ज्योति जगाने में सफल हो जाएँ तो यह हमारा मानव पर बहुत बड़ा उपकार है, यह हमारी बहुत बड़ी विजय है ।"

टिर्की बोला—"फादर टाम्स एक दिन मुझे भी यही समझा रहे थे ।"

दीदी कुछ गंभीर होकर बोलीं—"तब तुमने मुझसे यह क्यों पूछा ?

तुम से कुछ छिपा हुआ तो है नहीं।"

टिर्की ने कोई उत्तर नहीं दिया, और उदास सा लौट चला। जब वह कुछ कदम गया तो दीदी ने उसे फिर पुकारा—"सुनो!"

वह निकट आया तो, दीदी बोलीं—"कल से हम यों टहलने नहीं जाया करेंगे।"

कहती हुई दीदी मुझे लिए घर में चली आईं।

रात जब खा पीकर सोने की तैयार में थे, तो मैंने दीदी से पूछा—"दीदी दयाल तुम्हें अलग ले जाकर क्या कह रहा था?"

"सुन!" वे बोलीं—"सूरज और चन्द्रमा की पूरी कहानी सुनाती हूं। सूरज चन्द्रमा को जब छील-छील कर खाने लगा तो चन्द्रमा ने सूरज से अपने प्राणों की भिक्षा मांगी।"

"सूरज भूखा था न दीदी!"

"हां सुन! सूरज को चन्द्रमा पर थोड़ी-सी दया आ गई और उसने उसे छीलना बंद कर दिया।"

"क्यों?"

"ताकि चन्द्रमा जीवित रह सके।"

"बहुत निर्दयी था सूरज। है न दीदी!" खिड़की की राह मेरी नजरें आसमान के उस चांद पर चली गईं, जो हमें निहार रहा था। मैं उसे देखता रहा मन में करुणा, निराशा और दर्द लिये। उसे देखते-देखते जाने कब नींद आ गई?"

सवेरे दीदी मुझे अपने साथ लेकर सेनिटोरियम की ओर चल दीं। मैं इसका कोई कारण नहीं समझ पाया। रास्ते में पूछा—"दीदी हम कहां जा रहे हैं?"

वे बोलीं—"पीछे बताऊंगी चुप-चाप मेरे साथ चलाचल।"

सेनिटोरियम में पहुंचकर दीदी ने वहां के डाक्टर तथा अन्य लोगों से भेंट की। कुछ फार्म भरे। उसमें दसख्त किये और मुझे साथ लिये खुशी-खुशी घर लौट चलीं।

रास्ते में मैंने दीदी से फिर पूछा—"तुम यहां किस लिए आई थीं?"

जवाब में उन्होंने कहा—"अब मैं यहां काम किया करूंगी?"

"क्या काम ?"

'नर्स का।"

"क्या तुम रोज घर से यहाँ काम करने आया करोगी ? मुझे भी तुम्हारे साथ आना पड़ा करेगा ?"

"नहीं अब मैं यहीं रहा करूंगी। इसी अस्पताल में।"

"नहीं !" मैं अपने मन की खीझ दर्शाता हुआ बोला—"बाबा तुम्हें वहाँ नहीं रहने देंगे।"

वे कुछ नहीं बोलीं और ओठों में मुस्कराती रहीं।

बाबा को जब यह पता चला कि दीदी ने तपेदिक के अस्पताल में काम करने की मंजूरी दे दी है, तो वे बहुत निराश हुए। इसी दशा में वे फादर टाम्स के पास गए। और उनसे सब कुछ बता दिया।

फादर टाम्स ने दीदी से पूछा, 'क्या यह बात सच है बेटी कि सेनिटोरियम में नर्स की सेवा स्वीकार कर ली है।"

"हाँ फादर !"

"ये तुमने अपनी इच्छा से किया ?"

"हाँ फादर"

"कैसे, क्या सोचकर ? मुझे कुछ बताना पसंद करोगी ?"

"फादर," दीदी होले से बोलीं—"बीमार और दुखी की सेवा करना हमारा कर्त्तव्य है न ? ये सेवा की सेवा है और नौकरी की नौकरी। दयाल चाहता है मैं नौकरी करूं। इससे अच्छी नौकरी और क्या मिलेगी।"

फादर अपनी नीली पवित्र आँखों से दीदी ओर देखने लगे, देखते रहे। मुँह से कुछ नहीं बोले। कुछ क्षण सोचते रहे फिर कहने लगे—"बस तुमसे यही पूछना था। तुम आ सकती हो।"

दीदी घर में चली आईं। मैं बाबा के साथ फादर टाम्स की कुटिया में ही रह गया। फादर बाबा से बोले—"ऐलिस ने जिसको अपने जिम्मे लिया है, उससे उसे मना कर सकना मेरे बस की बात नहीं। प्रभु ईसा की दया उस पर है। वे महान हैं जो सेवा का व्रत लेते हैं।"

बाबा के मुँह से कोई शब्द नहीं निकला। उनकी आँखों के कोर भीग गए।

अगले दिन इतवार था। इतवार की प्रत्येक संध्या को बाबा हमें उस कब्रिस्तान में ले जाते थे, जहाँ हमारी माँ दफन थीं। हम कुछ देर तक वहाँ रहते और माँ की आत्मा की शान्ति के लिए प्रार्थना करते। और उनकी कब्र पर मोमबत्ती जलाकर वापस लौट आते।

उस इतवार को बाबा माँ की कब्र के पास खड़े होकर बोले—'ऐलिस बिटिया। तुम्हारी माँ तपेदिक से मरी थीं। वह खून थूका करती थी। फादर टाम्स की दवा भी उसे नहीं बचा पाई। यह छूत की बीमारी बड़ी बुरी है। होशियार रहना।

दीदी ने झुक कर माँ की कब्र का बोसा लिया। मैंने भी ऐसा ही किया।

दूसरे दिन दीदी घर से विदा हो तपेदिक के अस्पताल में चली गईं। बाबा और मैं छोड़ने गए। जब लौटकर घर आए, दीदी के बिना घर सूना दिखाई दिया।

कुछ महीनों के बाद फादर टाम्स ने मुझे भी पढ़ने के लिए राँची भेज दिया। मैं दीदी से कुछ दूर चला गया।

उसी वर्ष फादर टाम्स की मृत्यु हो गई। वे बहुत बूढ़े हो चुके थे। राँची में मैंने यह खबर बड़े दुख के साथ सुनी थी। बाबा की आँखें पहले से ज्यादा खराब हो चुकी थीं। यह खबर भी कुछ कम दुखद नहीं थी।

फागुन बीत चुका था। आम के पेड़ पर टिकोढ़े गमक रहे थे। और महुआ के पेड़ों पर से महुआ चुअने लगा था। फिर गाँव के वातावरण में था। जिस दिन आया उसी दिन उत्सुकता पूर्वक दीदी से मिलने गया।

"कब आये भईया ?" धीमे स्वरों में उन्होंने पूछा।

"आज ही आया हूँ !" रुँधे हुए कंठ से मैं बोला।

"अच्छे हो न ?"

"हाँ ! तुम........लेकिन दीदी ?"

"आराम कर रही हूँ !"

"क्या थक गयी ?"

"ऐसा ही समझो।"

तब से दीदी को पलंग से ही लगा हुआ पाया। जाने उन्होंने कितना काम किया था, रोगियों की कितनी सेवा की थी, पर उनकी थकावट में

फर्क नहीं आया था। कुछ आराम नहीं मिला था उन्हें। वे दिन ब दिन और निढाल होती जा रही थीं उनके शरीर की हड्डियां और उभरती आ रही थीं। सूरज उन्हें छील-छील कर खा रहा था। अब वे उस से अपने प्राणों की भीख नहीं मांगती थीं।

और आज तो ऐसा लगा, जैसे वे भूखे सूरज को ही भूल गई हैं, वह उन्हें छील छील कर खा रहा है। खा चुका है।

मैं घर लौटता हुआ, कब्रिस्तान में रुक गया। मां की कब्र के पास गया। कुछ देर खड़ा उसे देखता रहा। फिर झुककर उसे बोसा दिया लौटने लगा तो टिर्की पर नजर पड़ी। वह उदास सा उसी टीले पर बैठा हुआ था, जिस पर कभी दीदी के साथ आ कर बैठा करता था।

मुझे देखते ही बोला "पाल क्या एलिस को देख कर लौट रहे हो ?"

मैं उसके निकट जा कर बोला "हां भैया।"

"मेरे बारे में कुछ बोली थी ?"

"बोली थी।" मैंने यों ही कह दिया।

"तो फिर मैं कल उसे देखने जाऊं ?"

"वे मना करती हैं, कोई उनके पास न आए ! मुझे भी मना कर दिया है।"

अंधेरा उतर आया था। सारे वातावरण में स्याही सी बिखर गई थी। अंधेरे का यह अहसास इधर मुझे बहुत अखरने सा लगा था। मैं उस से बोला "घर नहीं चलोगे भैया ?"

वह बोला "तुम चलो मैं अभी यहां कुछ देर बैठूंगा।"

मैं उदासियों में घिरा हुआ सा लौट चला। दीदी ने टिर्की को कभी भूखे सूरज की कहानी नहीं सुनाई होगी। जरूर सुनाई होगी। फिर वह दीदी से क्यों मिलना चाहता है, दीदी का इन्तजार उसे क्यों है ? मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। मैं अंधेरे से घबरा रहा था, और बढ़ा चला जा रहा था। थका हारा और खामोशी से घर की ओर बढ़ा चला जा रहा थका हारा और खामोश-सा। भूखे सूरज की कहानी बड़ी दर्दनाक थी !

पहला पत्र

शिवनन्दन कपूर

जन्म—३१ दिसम्बर १९३० ई० को टाण्डा, फैजाबाद (उ० प्र०)
में हुआ। कविता, कहानी, लेख लिखे हैं। हिन्दी के अतिरिक्त
उर्दू, बंगला, गुजराती, मराठी आदि से भी परिचय है।
हिन्दी के प्रतिष्ठित पत्रों में आपकी रचनायें
समय-समय पर प्रकाशित होती रहती हैं।
आकाशवाणी से वार्तायें भी प्रसारित
हुई हैं। वर्तमान में आप शास-
कीय महाविद्यालय
भिंड में अध्ययन
कार्य कर
रहे हैं।

कौशल मेरा बड़ा प्यारा मित्र है। वैसे तो उसमें कोई खराबी नहीं, सिवाय इसके कि प्रतिदिन मेरी बैठक में जमे रहना, आते ही चाय की फर्माइश। और चाय भी बेचारा खाली कैसे पिये। बड़े भोलेपन से कहता है, "सेहत पर बुरा असर पड़ेगा।" वह हमें भी बुलाता है, मगर होता यह है कि चार का समय देकर हजरत तीन बजे ही गायब हो जायेंगे।

एक दिन गजब हो गया। कौशल ने नदी के लिये चलते समय साबुनदानी में पीयर्स सोप रखा। बोला—"भाई, रोज मैं तुम्हारे साबुन लगा लेता हूँ। आज तुम लोगों की छूट। "हम खुश-खुश, किनारे पहुँचे। पानी में, बदस्तूर, जवानी और फिर हाथों से छींटाकशी हुई। हम हैरत में, आखिर कौशल साबुन लगाने क्यों नहीं निकल रहा है ? रंजन चुपके से बाहर निकला। साबुनदानी का ढक्कन चुपके से खोला। एक दृष्टि कौशल पर डाली। शायद अब भी छीनने दौड़ पड़े। पर वे हजरत बोले—"लगाओ यार, लाया किस लिये हूँ।" पर यह क्या ? रंजन ने आवरण खोला, प्रेम से देखा, और फिर मुँह बना कर, सर लटकाये, खामोश वापस। क्या हुआ मेरे यार को ? आखिर टण्डन

गया। साबुन उठाया, टटोला, और रख दिया। बोला—"कम्बख्त का साबुन हमसे नहीं पचेगा। और हँसने लगा। आगे बढ़ कर सेठ घसीटामल ने आवरण का पर्दा उठा ही दिया। मिट्टी का साबुन। ऊपर एक कागज भी चपका था। कई आँखें एक साथ झुक गयीं। कम्बख्त ने लिख रखा था, "और लगाओ गधो। मुफ्त का साबुन लगाने चले हैं।" बालू के गोले चलाये गये, पर वह कम्बख्त हर बार डुबकी लगा जाता। हर बार ऊपर आने पर वही खिझाने वाली हँसी। हार कर एक साथ जा पकड़ा। "चल, तुझे आज जलेबियाँ खिलानी पड़ेंगी।"

"बस, कितनी जलेबियाँ खाओगे? अभी बता दो।"

हमने सबका, एवं दण्ड का ध्यान रखते हुए, महज दो सेर जलेबियों और एक सेर नमकीन का दण्ड दिया।

वह कुछ आनाकानी करने के बाद तैयार हो गया।

हमने बच्चे को बुलाया और कहा—"यह ले आयेगा। इसे पैसे दे दो।" "पैसे तो हैं नहीं यार। चौधरी स्वीट हाउस में हिसाब है। वहीं से मंगाये ले रहा हूँ।"

"हमें तो जलेबियों से मतलब है, कहीं से मँगाओ।" उसने हमारे सामने प्रेम से दो सेर जलेबियाँ, और १ सेर नमकीन लिख दिया।

"बेटे जलेबी आने तक तुम छूटोगे नहीं। भागने की कोशिश न करना। मैंने कौशल से कहा।

"बैठा हूँ भाई।"

बच्चा दूर से दोने लिये चला आ रहा था। जलपान हुआ। हम खुश थे। कई दिनों तक इसकी चर्चा रही। पर महीना समाप्त होते ही हमारी खुशी हवाई बादल-सी उड़ गयी, और हमने उसकी धूर्तता की फिर प्रशंसा की। हुआ यह कि कम्बख्त ने मिठाई के पर्चे पर अपनी जगह मेरे हस्ताक्षर कर दिये थे। हमारे ही बच्चे के पर्चा ले जाने से संदेह के लिये स्थान भी नहीं था।

पढ़ाई तो कौशल ने हाई स्कूल से ही छोड़ दी थी, और पोस्ट आफिस में क्लर्क हो गया था। उसने मधुशाला को सुखद जीवन की पाठशाला मान लिया था। कभी-कभी हम उसे चिढ़ाने के लिये कह देते, 'साले की शादी नहीं होगी।' एक क्षण के लिये उसके कलेजे में बल पड़ जाते। यह व्यंग्य मर्म पर चोट करने वाला था भी। इसी कारण अभी तक उसकी शादी न हो सकी थी। कुछ दिन पहले बरेली से उसकी शादी की बातचीत चली थी। तय होने पर माँ बेटे लड़की देखने गये। बात तय हो गयी, किन्तु कुछ दिनों बाद टूट भी गयी। लड़की के घर वालों को जब श्रीमान जी के कई बार के प्रयास से

भी हाई स्कूल की देहरी न लांघ पाने, तथा शीशे की लाल परी के चक्कर की बात सुनी तो वे बिदक गये। इसने सोचा, जरूर किसी ने दुश्मनी निकाली है पर कुछ पता न चल सका।

अचानक एक दिन बरेली से तार आ पहुंचा, 'शादी करनी हो तो स्वीकृति दो।' स्वीकृति चली गयी। वहीं के एक निर्धन सज्जन थे। धनाभाव से लड़की की शादी नहीं हो पा रही थी। इन्हें पहले लड़की देखने जाने पर देखा था। शादी टूट जाने की बात सुनी तो तार दे दिया। इस बार भी लड़की देखी गयी। कोई झगड़ा नहीं उठा। बारात गयी। वापसी में वधू का पता नहीं। लेकिन मेरा दोस्त बड़ा खुश था। एम० ए० की परीक्षा सर पर होने के कारण मैं जा भी न सका था। मिलते ही पूछा, "क्या यार खाली लौट आया? फेरे-वेरे पूरे हुए, या चोट दे दी गयी?" "फेरे क्यों न पूरे होंगे। अरे उसकी तो किस्मत ही खराब थी जो मुझसे मुख मोड़ बैठी। अब पछताती होगी।

"अच्छा छोड़। सच बता। भावी को क्यों नहीं लाया?"

"अरे भाई हाई स्कूल की परीक्षा में बैठ रही है ना। इसीलिये छोड़ आया हूं। परीक्षा समाप्त होते ही ले आऊंगा।"

इस बार मैंने उसके कान के पास मुंह लाते हुए कहा, "यह बता कुछ बात-बात करने का मौका लगा? पसंद आई?"

"अरे मैं कभी चूका हूं? और पसंद तो ऐसी आई कि अब क्या कहूं।"

दिन बीतने लगे। हाई स्कूल की परीक्षायें समाप्त हुई। एक दिन शाम को उसके आफिस से आने के थोड़ी देर बाद उसके घर गया। मेरे पहुंचते ही उसने बेतहाशा बिगड़ना शुरू कर दिया।

"मजाक उड़ाने की कोशिश की है, मैं भी उसे बरबाद कर दूंगा। खाक कर दूंगा। उसने क्या समझ रखा है। मैं जहर खा लूंगा।"

"क्या बात है? क्यों आज आते ही खफा हो रहा है?" मैंने पूछा।

"बताऊं क्या खाक।" और उसने मेरे हाथ पर एक पत्र रख दिया। पत्र उसकी श्रीमती का था। लिखा था—

मेरे प्यारे प्रियतम,

मैं आज पहली बार तुम्हें पत्र लिख रही हूं। निश्चय ही आप भी बड़ी प्रतीक्षा में होंगे। मेरे सब पर्चे अच्छी तरह हो गये, और पास हो जाने की पूरी आशा है।

मुझे एक बात जान कर बड़ा दुख हुआ कि आप छै साल से हाई स्कूल में फेल हो रहे हैं। आपने यह बात मिलने पर भी हमें नहीं बताई। यह सोच

कर हमारा जी और भी दुख गया। अब आप विदा कराने न आकर, दूसरे को भेजियेगा। आप आइयेगा तो हमारी सखियां आपका मजाक उड़ायेंगी। और क्या लिखूं। अब आपके बिना यहां अच्छा नहीं लगता। माता जी को प्रणाम कहियेगा।
—आपकी दासी, मनोरमा

"अबे, तो इसमें उदास होने की क्या बात है। बोल तो मैं विदा के लिये चला जाऊं?" "तुम्हें उपहास होने की सूझती है। मैं नदी में डूब मरूंगा। इतनी बड़ी बेइज्जती?" कहते हुए वह आगे बढ़ा। मैंने झट उसकी बांह पकड़ ली।

"क्यों बेकार दौड़ लगाता है। सरयू में पानी ही नहीं। तेरे लिये चुल्लू भर पानी यहीं मंगवा दूंगा।"

"नहीं अब मुझे छोड़ दो। अब मैं जीना नहीं चाहता। मैं फांसी लगा लूंगा। कुंए में कूद पड़ूंगा।"

अब मामला गम्भीर था। लगा कहीं सचमुच कुंए में न कूद पड़े। बोला—"सुन तो यार। वह पत्र तुझे बनाने के लिए हम लोगों ने ही भाभी से लिखवाया था।"

"पर मुहर तो बरेली की है?"

"हां, रंजन बाबू बरेली जा रहे थे। उन्हीं से, वहां से पोस्ट करवा दिया था। अब खिला मिठाई कैसा बनाया।" हमने खुश होते हुए कहा।

"दूसरे की जिंदगी से खेलते हो। इतनी गहरी चोट पहुंचाई, ऊपर से मिठाई।" वह बिगड़ा।

"अब क्यों झेंप मिटा रहा है। हार गया तो मिठाई खिलाते शर्म आती है।"

कौन हार गया? महाशय, उनका नाम मनोरमा नहीं सुशीला है। और यह पहला पत्र भी नहीं कहा जा सकता।" कहते-कहते उसने एक बंडल आलमारी से निकाल कर फैला दिया।

"चल चल। जाने किसके पत्र दिखा कर नाम बदलना चाहता है।" मेरे यह कहने पर उसने विवाह की कविता दिखाई, जिस पर मित्र के नाम के साथ पत्नी का नाम सुशीला ही था।

"चलो इसी बहाने चिट्ठियां तो हाथ लगीं। अब तो खिलाओगे।" मैंने पत्र समेट लिये। पूर्व योजनानुसार चंडाल चौकड़ी आ पहुंची थी। इस बार कौशल जीत कर भी हार चुका था।

प्रभातो

व्योमेश

जन्म—१५ मई, १६३६ ई० को हुआ। प्रारम्भ में कवितायें ही अधिक लिखीं। अब कहानियाँ तथा लेख ही लिखते हैं। सभी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन हुआ है। कुछ रचनायें पुरस्कृत भी हुई हैं। शीघ्र ही 'साधना' कहानी संग्रह प्रकाशित हो रहा है।

रमसी मर गई और प्रभातो ने प्रसन्नता प्रकट की, यह कोई विचित्र बात तो न थी, दुनिया में अनेकों मरते हैं और उनकी मृत्यु से अनेकों को खुशी भी होती है लेकिन रमसी की मौत से प्रभातो को क्यों इतनी खुशी हुई कि उसने मुहल्ले भर में बताशे बँटवा दिये और रात को अपने घर में घी के चिराग जलाये? उस विचित्र प्रभातो का व्यक्तित्व कुछ अजीब सा था, यह मैंने कइयों से सुना था लेकिन यह मैं जान न पाया था कि ऐसा क्यों था? वह एक जल पान गृह की मालिका थी जो उस छोटे से कस्बे में अपने किस्म का अकेला ही था, उसकी आय से वह अपना और अपने साथ रहने वाले एक अपंग का भरण-पोषण करती थी। थोड़ी-सी खेती भी थी।

पहाड़ों के पंखों पर सन्ध्या उतर रही थी, तभी सुना प्रभातो को गहरी चोट लगी थी, सिर पर टाँके लग चुके थे, उसके मिरच के बाग में दो काली चिड़ियाँ क्रीड़ा कर रही थी और बार-बार पौधों पर बैठ जाती थीं, प्रभातो यह दृश्य न देख सकी, उसे क्रोध आ गया और वह उसके पीछे भाग चली, उसका पैर एक पत्थर से टकराया और घटना घट गई।

ठन्डक बढ़ चली थी, लम्बे-लम्बे डग भरता घर की ओर चला जा रहा था, कानों में खिलखिलाट की आवाज पड़ी, मुड़ कर देखा तो एक स्त्री पर दृष्टि पड़ी। हाथ में बड़ा सा पिंजरा और पिंजरे में एक बड़ा सा उल्लू। चिड़िया पालते बहुतों को देखा था किन्तु उल्लू पालने वाली प्रथम महिला से आज ही साक्षात्कार हुआ था, अनुमान लगाया प्रभातो होगी, अनायास ही मेरे चरण प्रभातो के जल-पान गृह की ओर बढ़ चले, वह बड़े चाव से अपनी उस पालित, चिड़िया को कुछ खिला रही थी, शायद किसी पक्षी के अन्डे थे, मुझे देखते ही मुस्करा कर बोली "आइये बाबू जी। देखिये मैं अपनी चिड़ियों का कितना ध्यान रखती हूं।" और वह खिल-खिलाकर हंस पड़ी, वह मेरे निकट ही दूसरी कुर्सी पर, बिना हिचकिचाहट के बैठ गई। "उस दिन उन काली-चिड़ियों ने मेरे बाग को नुकसान पहुंचाया, मुझे उन्होंने चोट पहुंचाई अब आप ही बतलाइये मैं उन्हें कैसे क्षमा कर सकती हूं, उनके अण्डों से मेरी चिड़िया को भोजन मिलता है, मैं उन्हें उड़ा लाती हूं। इनका वंश उजाड़ कर ही मुझे खुशी होगी।" उसका मुखमण्डल यह कहते-कहते विकृत हो उठा, और मैंने सोचा चिड़ियों से प्रतिशोध लेने वाली यह रमणी किस मनोविकृति का शिकार बनी है। मुझे अधिक सोचने का अवसर प्रदान नहीं किया। वह बोली—"चाय पीजियेगा बाबूजी।" वह उत्तर की प्रतीक्षा के बिना ही चली गई। अन्दर कहीं से खंखारने और कफ थूकने की आवाज सुनाई पड़ी। तभी प्रभातो चाय की प्याली लेकर आ पहुंची। किसी प्रकार उसे घूरने लगा किन्तु मन कुछ अजीब सा अनुभव कर रहा था, उस ओर से विचार फेरने की दृष्टि से मैंने कहा—"प्रभातो।"

"जी बाबू जी !" उसने विस्मय पूर्वक कहा !

"एक बात पूछना चाहता हूं।"

"क्या जरूरी है ?'

"यदि जरूरी न होती तो पूछता ही क्यों ?" मैं बोला,

"अच्छा तो पूछिये ?" उसने कहा।

"तुम इस अपंग की सेवा क्यों करती हो ?"

उसने मुझे एक अजीब अन्दाज से घूरा, मैं घबरा गया ! "यदि न बतलाना चाहो तो मत बतलाओ।" मैंने शीघ्रता से कहा और उठ खड़ा हुआ ! "नहीं आपको बैठना होगा।"

बैठते हुए बोला—"यदि तुम्हारी भावना को ठेस लगी हो तो मुझे क्षमा करो।"

"भावना मैं नहीं जानती क्या होती है? यदि होती भी है तो मुझ में शायद वह कब की मर चुकी है।" प्रभातो का उत्तर वेदनापूर्ण था—"लेकिन आपको प्रश्न का पूरा उत्तर दूंगी।" उसने इधर-उधर देखा और बोली—"क्या आप प्रेम नाम की कोई शक्ति मानते हैं, अच्छा छोड़िये इस बात को! मैं आपको यौन-मनोविज्ञान में नहीं घसीटना चाहती।" अन्धकार बढ़ रहा था, वह उठी और एक बारगी पिंजरे का द्वार खोल दिया उसने। वह भयानक पक्षी कमरे का एक चक्कर लगा कर बाहर बाग में उड़ गया प्रभातो आत्म सन्तोष के भाव से बोली—"गया, अब तो काले पक्षी नहीं बचेंगे क्या ख्याल है आपका!" मैंने कोई उत्तर नहीं दिया—"माँ बाप की इकलौती सन्तान थी मैं, आज के युग में यह सौभाग्य बहुत कम पाते हैं, लेकिन मुझे मिला था यह सौभाग्य। स्नेह दिया माँ बाप ने मुझे और नाम मिला प्रभा। पिता मुझे पुत्री मानते और माँ पुत्र, विधि का विधान कहिये या प्रकृति का उपहास मैं न पिता को सन्तुष्ट कर सकी न माँ को, फिर भी स्नेहछाया में पलती रही, घर में मुझे एक अजीब निराशा तथा घुटन का वातावरण लगता, मेरा आकर्षण रूमानी वस्तुओं के प्रति होने लगा, मैं अपने ही प्रति क्रोध का अनुभव करती, दिन-प्रति दिन मेरा व्यवहार उग्र व भयानक होता चला गया, युवा जोड़ों को देख कर मेरे मन में न जाने क्यों और कैसे उथल-पुथल मच जाया करती थी।"

यौवन ने वसन्त बन कर मुझ में प्रवेश किया, माता-पिता को मेरे विवाह की चिन्ता होने लगी, अपने ही पड़ोस में मैंने कितनी ही युवतियों को दुल्हन बनते देखा, उनके आंगनों में शहनाइयों की गूंज, ढोलकों की थपक व मजीरों की झनक ने भी मुझे बावला बना दिया, विवाह के मादक-गीत जब वायु-मण्डल में तिरते हुए मेरी हृत-तन्त्री से टकराते तो मुझे झकझोर देते और मैं भी कल्पना करती कि कोई सजीला सा जवान आ कर मुझे भी अपनी दुल्हन बना कर ले चला है और मैं लाजवंती सी उसके सामने बैठी हूं, और बाबू जी आप सच मानिये एक दिन मेरा यह स्वप्न भी सत्य हो गया किन्तु सच मानो वही मेरे जीवन की गाज थी।" प्रभातो यहां पर आकर रुक गई, एक

विचित्र-सी चिड़चिड़ाहट का स्वर सुनाई पड़ा, दूर बगीचे से रात्रि की नीरवता को चीरता कुछ पक्षियों का कलरव सुनाई पड़ा थोड़े ही समय बाद वह मनहूस उल्लू तूफान की तरह आ कर कमरे में मँडराने लगा, प्रभाती हर्ष से विह्वल थी, उसने उठ कर पिंजरे का द्वार खोल दिया। उल्लू उसमें बैठ कर अपने शिकार का आनन्द लेने लगा और प्रभाती ने पिंजरे को चूम लिया, वह फिर मेरे निकट आ कर बैठ गई बोली—"आप रुष्ट न हों बाबू जी! मैं आपको सब कुछ बतलाऊँगी। मेरे आँगन में भी मेरा साजन आया, माँ ने आँखों में आँसू भर कर पिता ने छाती पर पत्थर रख और अन्यों ने सुहाग के अमर रहने का आशीष दे विदा किया और सास ने पलक पाँवड़े बिछा कर मेरा स्वागत किया!

"संध्या आई मेरे दुर्भाग्य की संध्या! नवेली दुल्हिन सी मैं बैठी थी एक सेज कक्ष में, और श्रांत पथिक मंजिल के समान, प्रियतम आए उस समय की उत्तेजना का मैं क्या उल्लेख करूँ उसके बाद। उसके बाद वही सब हुआ मेरे पति मुझ से दूर-दूर रहने लगे, वे मेरी सूरत से शायद उन्हें घृणा हो गई थी, सास मुझे कुतिया कहती और दुत्कारती, और जब पति रमसी को मेरी सौत बना कर ले आए तो मैं कर तो कुछ न सकी लेकिन मेरा मन प्रतिशोध की भावना से भर गया, उसकी सुहागरात मेरे दिल की आग बन गई, और अन्त में मैं वहाँ से भाग गई लेकिन मेरे पास कुछ न था, मैं पति से बदला लेने के लिए बाजारू औरत बन जाती किन्तु वह भी तो सम्भव न था मैंने यह रेस्तरां चला लिया, लोगों को मेरी वास्तविकता तो ज्ञात न थी, वे मेरे जलपानगृह में भँवरों के समान मँडराने लगे और मेरे मन में प्रतिशोध की आग भड़कती ही रही। मैं उनकी शत्रु बन गई, मैं जानती थी कि मिरच की जमीन फसल उगाने से, उसकी उर्वरा-शक्ति बहुत घट जाती है, मैंने इसी कारण मिरच की खेती प्रारम्भ कर दी, इसी मध्य मैंने सुना कि रमसी मर गई, उनकी मृत्यु बच्चे को जन्म देते समय हुई, यह समाचार सुनकर मैं हर्ष से नाच उठी, आह कितनी सुखद घड़ी थी, मेरे लिए। मैंने घी के दीप जलाये मेरी मिरच की खेती और घना रूप लेने लगी एक दिन मेरी उस खेती में दो पक्षियों की जोड़ी ने हानि पहुँचाने का प्रयत्न किया, उनकी क्रीड़ा इसका मुख्य कारण था, शायद अंडे देने के लिए उन्होंने घोंसला बनाना था, मेरे लिए

यह सब असह्य था औ''''इसके बाद की कथा मेरी सुनी थी, अतः मैंने कहा 'प्रभातो'''''''।' उसने मुझे चुप रहने का संकेत किया और बोली 'बाबू जी ! इस घटित घटना ने मुझे अधिक उग्र बनाया और मैंने उन पक्षियों का नाश करने के लिए उल्लू पालना प्रारम्भ कर दिया, यह उल्लू मुझे अच्छा लगता है। इस मध्य एक घटना और घटित हुई, मेरे पति को एक दुर्घटना का शिकार बनना पड़ा उनका जीवन तो बच गया लेकिन उनकी शक्ति का नाश हो गया हाथ-पैर टूट गए, मुझे इससे आत्म-सन्तोष मिला, उनकी माँ मर चुकी थी, कोई सहारा न था उसका, मैं उसे अपने पास ले आई लेकिन यह उसके प्रति करुणा का नहीं प्रतिशोध का भाव था, उसे असहाय तथा अपंग देख कर मुझे बड़ा सुख मिलता है, जब वह खाँसता और खखारता है जब वह कराहता व आह भरता है तो मेरा हृदय असीम सुख का अनुभव करता है। प्रभातो यह कह फिर चुप हो गई मानों अपने हृदय में उमड़ते शैलाब को रोक रही हो और कोने में रक्खे पिंजरे में उल्लू बेतरह चीख रहा था उसका अपंग साथी कहीं कराह रहा था और मैं उस विचित्र प्रतिशोधी उभयलिंगी प्रभातो का गृह छोड़ कर भीगी रात में एकान्त सड़क पर चला जा रहा था। उसका मनोविज्ञान निश्चय ही प्रवृत्ति का प्रतिशोधी था।

कुछ दिनों बाद सुना प्रभातो पागल हो गई।

कमीने कहीं के

श्रीमती शीला शर्मा

पहला कहानी संग्रह 'टूटी चूड़ियाँ' और दूसरी पुस्तक 'भारत माता' गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया द्वारा पुरुस्कृत हैं। उपन्यास 'एक था' उ०प्र०, बि०प्र० द्वारा पुरुस्कृत है। 'मछलियों का वंश' म० प्र० सरकार द्वारा पुरुस्कृत है। शीघ्र ही और भी पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। इंगलैंड, योरुप, अमरीका, मलाया, थाईलैंड आदि कई देशों का भ्रमण कर चुकी हैं। लिखने की प्रेरणा अपने पिता पं० रामगोपाल मिश्र से मिली, जो आज हिंदीके जाने माने लेखकों में से हैं।

मेजर त्रिपाठी ने 'सभ्यता की निशानी' गिलास में उडेली और वह गिलास अपनी पत्नी की ओर बढ़ा दिया।

अपने लिपिस्टक भरे होठों के कोने पर क्षीण मुस्कराहट ला कर लीला ने कहा—"थैंक यू"। अब मुस्कराहटें लिपिस्टिक की मुस्कराहटें रह गई थीं ओठों की नहीं। लीला ने गिलास मुंह से लगा लिया। गिलास की झाग उसकी ओठों की लाली से टकरा कर लौट आये।

"आई कैलाश" मेक अप से दबी पलकों को नीचा करके उसने अपने पति की ओर देखा। दिवस के केवल इसी प्रहर में उसकी आंखों में अपने पति के लिये कुछ स्नेह उमड आता था।

मेजर अपने गिलास में सोडा लौट रहा था।

"तुम्हारी हेल्थ के लिये"। उसने अपना गिलास लीला की ओर उठाया। लीला के पिचके गाल और सूखी आंखे उसकी इन्हीं शुभकामनाओं के आधार पर जीवित थे।

क्लब में भीड़ बढ़ने लगी।

मिसेस त्रिपाठी के पास मिसेस भद्रा आकर बैठ गई।

"बेबी कैसा है जी ?"

दिन में कितनी भी बार मिलो यह प्रश्न पूछ लेना आवश्यक था।

"ठीक है—थैंक यू-आज तो बेबी का फोटो इन्लार्ज होकर आया है। मैंने उसको कोर्निस पर रख दिया है।" सन्तान के प्रति अपनी कर्तव्यपरायणता की दीक्षा देते हुए लीला ने कहा।

"आपका बेबी कैसा है ?"

"अभी लिवर बिलकुल ठीक नहीं हुआ है। आया से बोल कर आई हूं कि अभी दवा देती रहो। मेरे बेबी के तो इतने फोटो हो गये हैं—बात यह है कि मेरे हसबैंड खुद फोटो खींचते हैं—अब तो मैंने इन्लार्ज कराना भी छोड़ दिया है।"

लीला मिसेस भद्रा की बातों का मीठा व्यंग समझकर जल उठीं—पर जब तक स्वयं अवसर न मिले बात को लौट ही देना चाहिये।

"देखा आपने मिसेस चन्द्रा को ? रोज नई साड़ी पहन कर आती हैं। पता नहीं कहां से ?"

"आपको पता नहीं ?" उसने होंठ बिचका कर कहा, "इनकी दुहरी कमाई है दुहरी।"

"कैसे ?" लीला ने पूछा।

"किस दुनियां में रहती हो ?" मिसेज भद्रा बोली। "तुम्हें जैसे मालूम ही न हो। कौन अपने हसबैंड की कमाई पहनती हैं। ये सब साड़ियां तो उनके प्रेजेंट्स हैं प्रेजेन्ट्स।"

"कैसे प्रेजेन्ट्स, बर्थ डे प्रेजेन्ट्स ?'

"अरे। इनकी बर्थ डे तो रोज ही होती है। ये सब खरेवाल ला लाकर दिया करता है, खरेवाल।'

"कौन सा खरेवाल, अपना खरेवाल ?"

"हां हां वो अपना खरेवाल। क्या सोच रक्खा है तुमने उसको ? ये सब देखने ही के सीधे हैं। इनके अन्दर जाकर देखो तो ये गुल खिले मिलते हैं।"

मिसेज चन्द्रा सीधी मिसेज त्रिपाठी ही की मेज पर चली आई।

"नमस्ते"।

"नमस्ते जी, नमस्ते।"

"कहिए, क्या हो रहा है।"

"हम और मिसेज भद्रा आपकी साड़ी की तारीफ कर रहे थे। कितना सुन्दर शेड है। कहां से ली है ? लीलाराम से।"

यह तो मुझे बर्थ-डे पर मिली थी। मुझको भी यह साड़ी बहुत पसन्द है। लीलाराम से मैंने पूंछा था, कहता था—'दो सौ' से कम की न होगी।

"आप बड़ी लकी हैं।" मिसेज भद्रा बोलीं और एक व्यंग की हँसी दोनों के लिपिस्टिकों पर खेल गई।

'मिसेज सहाय।' एक ड्रिंक और लीजिए। त्रिपाठी बेरे को बुलाते हुए बोला।

जब लीला का ध्यान उधर गया तब दोनों एक कोने की मेज पर बैठे गिलास की सभ्यता में ढल रहे थे।

पता नहीं क्यों, मिसेज सहाय से लीला को खास नफरत थी। उसकी नसों में प्रतिशोध की ज्वाला भड़क उठी। फिर ये उस औरत के पास जाकर बैठ गए। बीस बार कह चुकी हूं, तुम्हारा उस औरत के पास बैठना मुझ को पसन्द नहीं है। अब की मैं भी दिखा दूंगी। और वह भी सामने ही एक सोफे पर बढ़ी जिसको पुरुषों ने पहले से ही अपना रक्खा था।

'मैं यहां बैठ सकती हूं ?'

'अवश्य। अवश्य।' पुरुषों ने जगह करते कहा।

पर जगह करने पर भी बहुत कम निकली।

'बैरा। एक बड़ा विस्की'—मेजर त्रिपाठी को अपना प्रतिशोध दिखाने के लिए लीला जोर से बोली।

मेजर ताड़ गया कि मेरा इस औरत के पास बैठना लीला को नागवार गुजरा है। वह उठ कर आया और बोला—

'डार्लिंग, जरा सुनना।'

लीला उठी और उसके साथ हो ली। दोनों गैलरी में चले गए। एकान्त में दोनों ने अपनी सभ्यता का आवरण उतार फेंका।

'यह क्या बदतमीजी है।' मेजर गुर्राया।

'तुम अगर उस औरत के पास बैठ सकते हो तो मैं भी मर्दों में बैठ सकती हूं।' लीला ने अपनी आंखों से अंगारे उगलते हुए कहा। अपनी बदतमीजी देखो। खबरदार। जो मुझसे कुछ कहा तो।'

'क्लब में ये हरकतें करते हुए शर्म नहीं आती। अच्छा लो, मैं हट जाता हूं।'

'तुम हट जाओगे तो मैं भी हट जाऊंगी।'

जब दोनों गैलरी के बाहर निकले तो मुस्करा रहे थे, मानों प्रेम-वार्ता करके आए हों।

पर नशे में की गई इन सन्धि की शर्तों का कब तक ध्यान रहता। थोड़ी देर में मेजर उसी मेज पर और उसी औरत के पास जा पहुंचा और लीला फिर उसी सोफे पर से चिल्लाई—

'बेरा। एक बड़ा विस्की।'

मेजर फिर उठकर आया और अपने गिलास का अमृत लीला के गिलास में लौटने लगा। लीला ने नफरत से गिलास उठा कर क्लब के दर्पण से चमकते हुए फर्श पर दे मारा।

खन् से होकर गिलास चकनाचूर हो गया। सब उसकी ओर देखने लगे। सभ्य समाज में यह असभ्य व्यवहार।

मिसेज भद्रा मिसेज चन्द्रा के कानों के पास जाकर अपने कान लगा कर बोली—'पता नहीं, इन्हें क्लब का मेम्बर किसने बनने दिया। ऐसे लोगों को ब्लैक बौल कर देना चाहिये।"

लीला खरेवाल के साथ उठकर चल दी। मेजर का माथा ठनका। उसने भी जीप स्टार्ट कर दी।

घर जाकर देखा, लीला अपने बेड में लेटी थी, वह बेड रूम जिसका कोना कोना दाम्पत्य प्रेमों की ओर संकेत करता था।

मेजर गुर्राया—'तुम खरेवाल के साथ कैसे आई ?'

'तुम मिसेज सहाय के पास कैसे बैठ गए ?' लीला ने अपने लम्बे नाखूनों वाले शेरनी के से पंजे भींचते हुये कहा।

'बदचलन कहीं की।'

'बदचलन तुम।' और पास रक्खी पानी की बोतल और गिलास खींच कर लीला ने मेजर के सिर का निशाना लगा दिया।

मेजर का सिर भन्ना गया। उसने भी कुछ उठाना चाहा। पर आज उसके और लीला के नशे में अन्तर था। वह जो चीजें जो पहले आसानी से उठा लेता था वे भी न उठा पा रहा था। और लीला जो चीजें कभी न उठा पाती थी वे भी उठा-उठा कर फेंक रही थी।

थोड़ी देर में घण्टी बजी। बेरा क्वाटर से भागा–भागा आया। साहब ने शायद शराब ज्यादा पी ली है। बेडरूम फिर सुव्यवस्थित कर दिया गया, उतना ही जितना पहले था।

रात ही को डाक्टर आया। ड्रेसिंग हुई।

'क्या बताऊँ डाक्टर साहब। बाथ रूम में ऐसा पैर फिसला, शेव करने का गिलास हाथ में था सिर से लगा, और हाथ वाशिंग बेसिन पर इस जोर का पड़ा कि········' मेजर साहब सफाई दे रहे थे।

हाथ स्लिंग में डाले और सिर पर स्टिकिंग प्लास्टर का एक बड़ा पैच मेजर साहब बरामदे से निकले।

'यह शोर कैसा मच रहा है ?'

'हुजूर, रात धोबी ने ताड़ी पीली थी। उसकी औरत भी तो पीती है, हुजूर। दोनों में पता नहीं क्या हुआ कि दोनों में लड़ाई शुरू हो गई। लेकिन धोबिन ने धोबी का सिर फोड़ डाला। धोबी कुछ ज्यादा पी गया था।'

मेजर साहब बड़बड़ाने लगे—'क्या शोर मचा रक्खा है। घर में रहना मुश्किल कर दिया है।' नीचों की जाति ही ऐसी है। कमीने कहीं के।'

सच्ची वीरता

o

विद्या भास्कर वाजपेयी

o

जन्म-तिथि—सन् १९२८ ई० है। रामायण और पुराण आपके अध्ययन के प्रिय विषय हैं। साहित्य को सभी विधाओं में लिखा है। 'देहरी के बाहर' महिलोपयोगी निबन्ध और 'समाधि' उपन्यास आपकी प्रकाशित पुस्तकें हैं। पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशन होता रहता है।

"ठहरो" भीमसिंह ने पीछे घूमकर देखा एक अश्वारोही वेग पूर्वक अश्व दौड़ाता हुआ चला आ रहा है। पास आते ही कड़क कर बोले—'कौन ? देशद्रोही जयसिंह ? मेरी हत्या का उपक्रम करके आये हो अथवा अपने प्राणों से हाथ धोने ? सूर सांगा की शूरता को कायरता के पंजों में डालने के पहले तुम्हारी मृत्यु क्यों न हो गयी ? धिक्कार है तुम्हें ! क्या वीर प्रसवनी माता पद्मा ने इसीलिए उत्पन्न किया था। आज मेरी तलवार तेरे दूषित रक्त से स्नान करने को उतावली हो रही है।"

जयसिंह काँपने लगा। भय और विस्मय से उसका चेहरा पीला पड़ गया। नितान्त क्रूर निर्लज्ज दृष्टि एक बार ऊपर उठी फिर नत हो गयी। भीमसिंह ने पुनः ललकारा—किन्तु जयसिंह अचल रहा। कुछ देर भीम की भर्त्सना सुनने के पश्चात् वह घोड़े पर उछला। अश्व उड़ चला मुग़ल शिविर की ओर।

अरावली की विशाल उपत्यका पर भीम की सेना संगठित है। हरित धरातल पर शिविर पहाड़ियों के फफोले जैसे जान पड़ते हैं। पहाड़ी के पीछे

खून की होली खेली जा रही है। सहसा निशा रानी के आतंक से सशंकित भीमसिंह गुप्तचरों और प्रहरियों को सचेत कर शिविर-सम्व्यूहन हेतु खेमे से निकल आये। जयसिंह का अकस्मात् आना और अपमानित होकर लौट जाना उनकी चिन्ता का कारण बन गया। पहाड़ी के सभी गुप्त मार्गों का निरीक्षण कर वे दक्षिणी निकास पर पहुंचे ही थे कि उनके कान एकाएक किसी के पदचाप सुनते ही चौकन्ने हो गये। गरज कर उन्होंने पूछा—"सैनिक वहाँ कौन है ?"

"एक शरणागत"

"क्या चाहता है ?"

"भयावनी निशा में विश्राम चाहता है।"

"अच्छा तो उसका उचित प्रबन्ध कर दो" कहकर अपने स्थान पर आ गये।

भीम को रात भर नींद नहीं आई। वे उन्मन होकर कभी बाहर निकल आते और फिर भीतर हो जाते। सजग दृष्टि से शिविर पड़तालते रहे। उनींदी तारिकाओं को आंचल में समेट कर राका रजनी गमनोद्यत हुयी ही थी कि तभी तलवार की झनझनाहट सुनाई दी। भीमसिंह को लगा जैसे किसी ने तलवार म्यान से बाहर की हो। झट पहाड़ी के गुप्त मार्ग से उसी ओर चल पड़े जिधर से आवाज आयी थी। अन्तिम छोर पर पहुंच कर उन्होंने देखा—'प्रहरी निद्रा में बेसुध हैं।' चुपचाप निकट की एक झाड़ी में छुपकर बैठ गये और नवागन्तुक की प्रतीक्षा करने लगे।

सधे पाँवों जयसिंह गुप्त द्वार की ओर बढ़ा चला आ रहा था। प्राणों से प्राण लगाये किसी प्रकार वह पहाड़ी के गुप्त द्वार पर पहुँच गया। भेदिये को इस प्रकार घूमकर आते हुए देखकर भीमसिंह के माथे की धमनियाँ तीव्रता से धमक उठीं। जयसिंह की तलवार उन सोये हुए सैनिकों की ग्रीवा का स्पर्श करती उसके पहले ही झाड़ी से निकल कर भीमसिंह की तलवार म्यान से बाहर हो गयी। उस घनान्धकार में लपलपाती काल जिह्वा को देखते ही जयसिंह का कलेजा काँप उठा।

"ठहरो ?" मृत्यु का आवाहन करने वाले दस्यु, सूनी रात में इस प्रकार छिपकर आने का क्या अभिप्राय है ? तुम्हारा सिर उतारने से पूर्व नाम जान लेना जरूरी है। किसे धोखा देने चला है, उसे—जिसने स्वाधीनता की रक्षा में अपने आपको समर्पित कर दिया है ?"

भीम की तलवार उठ चुकी थी। जयसिंह को म्यान से तलवार निकालने का अवसर न मिला। "सोच लो, समझलो और यह न समझो कि मेरी तलवार एक निःशस्त्र विद्रोही पर उठ जायगी। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ निकाल ले अपनी तलवार। किन्तु बिना नाम बताये एक पग भी बढ़ना असम्भव है।" कहकर भीमसिंह ने उत्तर के लिए अपराधी की ओर देखा।

जयसिंह का साहस उखड़ गया। एक शब्द भी मुँह से न निकला। दौड़ कर उसने भीमसिंह के पैर पकड़ लिये। जलती मशालों की रोशनी में भीमसिंह ने देखा—'विद्रोही जयसिंह।' क्रोध प्रचण्ड हो उठा। वे अपने पर नियंत्रण न कर पाये। "मेरी उदार मानवता का दुरुपयोग करने वाले नराधम, यदि मैं सतर्क न होता तो निश्चय ही तू मुझे यवनों के हाथों बन्दी बनवा देता। मेवाड़ की विजयिनी उज्वल पताका को धराशायी करवाते तुझे निश्चय ही संकोच न होता। अच्छा हुआ तुम मिल गये। तुम्हारे विश्वासघात ने मुझे सदा के लिए सावधान कर दिया। अब निस्संदेह मेरी ही तलवार के घाट उतरोगे।" तत्पश्चात् उनकी दृष्टि कांपते सैनिकों की ओर घूमी—"ले जावो इसे और पहाड़ी के नीचे निर्विघ्न छोड़ आओ और बतला दो कि भविष्य में यदि इसी प्रकार भेद पाने का दुस्साहस किया तो बचकर निकल जाना सम्भव न होगा।" अपने आप पर खीझता जयसिंह पत्थरों से टकराता हुआ पहाड़ी के नीचे उतर चला और झाड़ियों के झुरमुट में पहुँचकर अदृश्य हो गया।

प्रातःकाल पौ फटने से पूर्व ही भीमसिंह ने आदेश दिया—"सैनिको! शत्रु ने हमारा राई-रत्ती भेद पा लिया है अतएव मातृ-भूमि की मर्यादा रक्षा के लिए यह स्थान त्याग देना ही श्रेयस्कर होगा। शिविर के तम्बुओं की रस्सियाँ काट दो। पाषाणों और शिलाखण्डों से पहाड़ी के मार्गों को पाट दो।" सारी सेना चींटियों की भाँति शिखर की ओर उन्मुख हो गयी। भीमसिंह अपने चुने हुए अंग रक्षकों के साथ कन्दरा में जा छिपे। वनदेवियाँ बाल रवि की आवानी में व्यस्त हो गयीं।

मेवाड़ के राणा राजसिंह के दो जुड़वाँ पुत्र उत्पन्न हुए थे। जिनमें भीमसिंह पहले उतरे थे और जयसिंह कुछ समय बाद। राणावंश में पुरानी प्रथा थी कि प्रथम राजकुमार के हाथ में उत्पन्न होने के समय अमर दूबी

बाँधी जाती थी किन्तु भूल से राजसिंह ने वही दूब छोटे पुत्र जयसिंह के हाथ में बांध दी। नियमानुसार अब उसे युवराज पद मिलना चाहिए था राणा का यह विचार जब महारानी पर प्रगट हुआ तो वे चिन्ता में पड़ गयीं क्योंकि दोनों ही पुत्र उसी के थे।

बड़े पुत्र भीमसिंह का अधिकार न मारा जाय—यह सोचकर महारानी ने एक दिन अवसर पाकर राणा से विनय की—आप जयसिंह को राज्य देने का विचार कर रहे हैं यह ठीक नहीं है। हमारे कुल की रीति है कि ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य का अधिकारी होता है। अतएव युवराज पद भीम को ही मिलना चाहिए।" राणा ने महारानी की बात मानली किन्तु जयसिंह भला कब मानने वाला था। भीमसिंह को अपने मार्ग से हटाने के लिए कटिबद्ध हो गया। भाई के निकृष्ट व्यवहारों से संस्कारशाली भीम की की आत्मा-क्षुब्ध हो उठी। राजधानी त्याग कर अरावली की शरण में आ गये। किन्तु उस दुरात्मा ने यहां भी उनका पीछा न छोड़ा। भीमसिंह टालते जा रहे थे और जयसिंह, उन्हें निर्वासित करने पर तुला हुआ था। भीमसिंह को राज्य का लोभ न था। हां चिन्ता थी तो केवल यही कि जयसिंह कहीं यवनों के हाथों कठपुतली न बन बैठे। इसी कारण राज्य की बागडोर उन्होंने अपने हाथ में ही ले रखी थी।

दिन चढ़ आया था। भीमसिंह की खोज में यवन-अश्वारोहियों के साथ जयसिंह पहाड़ी पर चक्कर काटने लगा। बहुत कुछ ढूंढ़ा किन्तु निराशा ही हाथ लगी। अन्ततोगत्वा, उसने आज्ञा दी और यवन सैनिक पहाड़ी के ढलान की ओर अग्रसर होने लगे। इतने में भीमसिंह सरदारों को साथ लिये कन्दरा से बाहर निकल आये और चुनौती भरे स्वर में बोले—

"ठहरो ? अपने परिश्रम के परिणाम की उपेक्षा करने वाले तुम लोगों का पारिश्रमिक प्राप्त किये बिना ही इस प्रकार खाली हाथों लौट जाना वीरत्व के लिए अभिशाप है।" कहते हुये भीमसिंह उसी स्थान पर बढ़ आये जयसिंह जहां खड़ा था। उस पर दृष्टि पड़ते ही भीमसिंह अंगार हो गये। क्रुद्ध स्वर में बोले—"जयसिंह ! नहीं युवराज जयसिंह ! आज मैं अपने और तेरे भाग्य का निपटारा कर लेना चाहता हूं। औचित्य को साक्षी करके मन छिपी कुवासनाओं को आमने-सामने रखकर देख लेता कि हम दोनों में अन्यायी कौन है ? इस प्रकार यवन सैन्य शक्ति का सहारा लेकर भीम पर विजय पाने

का तेरा स्वप्न सर्वथा मिथ्या है। शत्रु साम्राज्य पर अधिकार कर सकता है, संचित धनराशि लूट सकता है किन्तु हृदय पर अधिकार जमाना उसके वश की बात नहीं।"

यवन अश्वारोही अवाक् थे। जयसिंह का मुख लज्जा से विवर्ण हो उठा। चपेट खाये हुये सिंह की भाँति भीमसिंह बौखला गये थे। प्रतारणापूर्वक कहते गये—"रे कुलांगार जयसिंह! तेरी क्या इच्छा है? यदि मेवाड़ का छत्रपति बनना चाहता है तो ले यह राज-मुकुट और वीरत्व की परीक्षा देकर परम्परागत गौरव की रक्षा कर। यदि तेरी पिशाचिनी आँखें मेवाड़ की अतुल धनराशि पर गाड़ी हैं तो ले यह कोष की तालियाँ। तुम्हारा भ्रम है जयसिंह! मैं न तो राजा हूं और न सम्राट् ही। मैं तो केवल प्रजा की केन्द्रित सत्ता का प्रतीक मात्र हूं। स्वामिभक्त प्रजा का प्रतिनिधि हूं। तुम्हारी आँखें इस ऐश्वर्य को देखकर चौंधिया रही हैं। आज तुम्हारी लालसायें मेवाड़ की समृद्धि अपनाने को व्याकुल हो रही हैं किन्तु भूल जाओ जयसिंह!" कहकर भीमसिंह क्षण भर को रुके और दीर्घश्वास लेकर फिर बोले—"ध्यान रहे जयसिंह! जिसकी तलवार में सच्चा पानी है, साम्राज्य में सुख शान्ति की स्थापना वही कर सकता है। प्रजा की सारी शक्तियाँ, उसका भाग्य मुझ पर आश्रित है। इस नाते तुम्हारे साथ मैं वही व्यवहार करूंगा जो एक देश-द्रोही के साथ किया जाना चाहिए। मैं तुम्हारा बड़ा भाई अवश्य हूं किन्तु राजा भी तो हूं। यदि तू अपने को इस योग्य समझता है तो आ और यह सारा भार वहन करने का साहस कर। मेरे स्थान पर यदि तुम होते तो तुम्हें भी यही करना चाहिये था जो मैं कर रहा हूं।"

भीमसिंह की पवित्र भ्रातृ-भावना से जयसिंह के मन का कलुष धुल गया। उसका अन्तराल उमड़ा और वह अपने सहोदर भीम के चरणों में लिपट गया—"क्षमा करो भ्रातृचरण! मुझ पातकी के अपराध क्षमा करो। अधिकार लिप्सा के कारण मेरा विवेक नष्ट हो गया था। सुखों की अदम्य तृष्णा से चलायमान मेरा चित्त उन्मत्त हो उठा था। आज आपने मेरी आँखें खोल दीं। पूज्य चरणों की सेवा में शरीरपात हो यही अभिलाषा है। नेत्रों से अश्रु निकले और भीमसिंह के वन्दनीय चरणों पर गिर पड़े। भीमसिंह ने भाई को उठाकर बरबस छाती से लगा लिया। यवन सैनिकों ने घुटने टेक दिये। समवेत स्वर में सैनिक चिल्ला उठे—"राणा भीमसिंह यशस्वी हों।"

धूल, धुआँ और धूर्त

o

ज्योति प्रकाश सक्सेना

o

जन्म तिथि—२३ नवम्बर १९३१ ई० है। छत्र साल महाविद्यालय,
पन्ना में आप प्रोफेसर हैं। साहित्य की सभी विधाओं में
लिखते हैं। 'एक मुट्ठी चावल और दो हाथ' (खाद्य
समस्या पर विवेचन) विन्ध्य प्रदेश एक आर्थिक
परिचय (कहानी-संग्रह) 'मोलश्री'
'ओस और अंगार' 'कल्पनाओं
की धुरी पर' (कविता-संग्रह)
आपकी प्रकाशित
पुस्तकें हैं।

ऐतिहासिक रामगढ़ ! जिसने न जाने कितने राजवंशों का उत्थान और पतन देखा। जिसकी धरती पर न जाने कितनी बार खून की नदियाँ बह गयी; न जानें कितनी वीर आत्मायें उसकी प्रतिष्ठा की रक्षा करते-करते वीर-गति को प्राप्त हो गयीं। पर काल के कुचक्रों ने आज जिसकी सत्ता को शत-प्रतिशत नष्ट कर दिया। जिसके गगन-चुम्बी प्रसाद आज खंडहर बन गये। रोटी के सवाल ने जहाँ की वीरता, ईमानदारी और सच्चाई को एक भूली-बिसरी कथा बना दिया। जहाँ आज सिर्फ धूल के तूफान आते हैं और इन्सानियत के धुएं की आड़ में धूर्त अपना उल्लू सीधा किया करते हैं। आज का रामगढ़ !

मैं उन व्यक्तियों में हूं जो सुनने के स्थान पर देखने में अधिक विश्वास करते हैं। मैंने अक्सर लोगों को छोटी-सी बात का बतंगड़ बनाते हुए देखा है।

चार वर्ष बीत गये पर किसी भी तरह रामगढ़ न जा सका। पांचवे वर्ष राष्ट्र सेवा संघ के पंचम वार्षिक अधिवेशन में अपने ग्राम बिजपुरा का प्रतिनिधि बनकर रामगढ़ जाने का अवसर मुझे मिला।

ग्यारह जून। सांय-सांय करती हुई गर्म हवा। फिर भी मैं स्टेशन की ओर बढ़ता चला जा रहा था। गाड़ी आयी।

रामगढ़ आ गया था। थोड़ी ही दूर पर पहाड़ियों के बीच रामगढ़ का किला अपना ऊंचा मस्तक किये दिख रहा था। अटेची को जमीन पर रखकर मैंने उस ऐतिहासिक विभूति को प्रणाम किया। फिर बस्ती की तरफ चल पड़ा। ग्यारह बजे रात को उद्‌घाटन समाप्त हुआ। फिर मैं किसी ऐसे आदमी की तलाश में निकल पड़ा जो रामगढ़ के दर्शनीय स्थलों को जानने के अतिरिक्त उनके इतिहास से भी अभिज्ञ हो। बड़ी कोशिशों के बाद स्वागत समिति के एक सदस्य एक आदमी को लेकर मेरे पास आये। "ये हैं जोरावर सिंह। यहीं के खास आदमियों में से हैं।" उन्होंने कहा।

और फिर वह मुझे एकान्त में ले जाकर कहने लगे: "बाद में एक, दो रुपया दे दीजिए। बेचारे जरा से कमजोर हैं।" मैं राजी हो गया।

भोर हुई। और उसी मंगल-वेला में मैं अपने साथियों को लेकर रामगढ़ के दर्शनीय स्थलों को देखने चल दिया। प्रारम्भ किले से हुआ। कब बना, कैसे बना, किसने बनवाया, कौन किस महराज की बैठक, कौन किस रानी का रनवास; अमुक महाराज कहां नहाते थे, कहां खाना खाते थे, कौन-सी रानी कहां सोती थी, कहां बैठती थी आदि बातें जोरावरसिंह बड़ी बारीकी और इत्मीनान के साथ बतलाते रहे। लगभग दो घण्टे किले में ही लग गये। किले के बाद और स्थान देखने के लिए रवाना हुए। कुछ ही दूरी पर एक ऊंचे टीले पर एक खंडहर था—गिरी हुई दीवारें, बिखरे हुए ईंट-पत्थर। उसीक तरफ इशारा करके जोरावरसिंह कहने लगे:

"हां, तो साहब देखिए, ये जो आगे खंडहर दिख रहा है, यही एक समय हजूरिया महल था। इसी में महाराज मर्दानसिंह की पटरानी हजूरी रहा करती थीं जिनका पलंग रोज एक हजार बेला के फूलों से सजाया जाता, जिनके लिए रोज हजार किस्म के व्यंजन बनाए जाते। वे पानी पीतीं तो हजार खुशबू मिला; पान खातीं तो हजार मसालों वाला। और जब सोतीं तो पूरी एक हजार नौकरानियां उनको हवा करतीं।"

कुछ दूरी पर एक चबूतरा था। उसको दिखलाकर वे कहने लगे: "यही सती का चौरा है; यहीं गांव की सबसे सुन्दर औरत भस्म हो गयी थी।"

जब मैंने उस औरत के जल जाने की कहानी पूछी तो वे कहने लगे—"किस्सा न पूछिये, वह किस्सा क्या है जादू है साहब जादू। बात यह हुई कि एक दिन उस औरत की सुन्दरता की चर्चा महाराज कोमलसिंह के पास पहुंची। उन्होंने उसको देखने का निश्चय किया। पर अपनी कमजोरी दूसरों को न दिखलाने की वजह से उन्होंने यह निश्चय चुपके-चुपके ही किया। और इसलिए एक दिन वे बड़े भोर ही गांव के पनघट की ओर चल दिये। वहीं वह पानी भरने आया करती थी। महाराज ने उसे देखा और देखते ही रह गये। और जब वह पानी भर कर वापिस लौटने लगी तो महाराज ने उसका हाथ पकड़ लिया। पर साहब, महाराज का हाथ पकड़ना था कि धरती से एक भयंकर ज्वाला निकली जिसमें वह औरत जल कर भस्म हो गयी और महाराज देखते ही रह गये।"

शाम हुई तो रामगढ़ के चारों तरफ धुआं ही धुआं। पता चला कि घरों में खाना तैयार हो रहा है। चारों ओर ऊंची-ऊंची पहाड़ियां होने की वजह से ऐसा रोज ही होता। पर जब धुआं नाक को रूमाल से बन्द करता तो दम घुटने लगता। बड़ी परेशानी। दो चार घण्टे बाद जब धुआं कटा तो चैन मिला।

दो दिन बाद जब मैं वापिस लौट रहा था तब स्वागत समिति के एक और सदस्य ने मुझे एक ग्रन्थ दिया। रामगढ़ एक ऐतिहासिक विश्लेषण। लेखक काफी विख्यात इतिहासकार थे। सम्मतियां भी एक से एक अच्छी थीं। सोचा, चलो यह सोने में सुहागे का काम करेगा।

ट्रेन पर बैठा तो सिवाय रामगढ़ के और कुछ भी न सोच सका। डिब्बे में सिर्फ हम तीन लोग थे। मैं और एक नव-दम्पति। पाश्चात्य सभ्यता में रंगे होकर भी उनको पूर्वीय संस्कृति का ध्यान था। इसीलिये डिब्बे में शान्ति थी। पति महाशय 'इलस्ट्रेटेड वीकली' देख रहे थे और पत्नी 'विन्ध्याचल' के पन्ने उलट रहीं थीं। मैंने भी अटेची खोलकर 'रामगढ़' उठा लिया। पर उसको पढ़ते ही मैं आश्चर्य में डूब गया।

अभी तक मेरे दिमाग में जोरावरसिंह की बताई हुई सारी बातें घूम रही थीं और उसी के आधार पर मैंने रामगढ़ के बारे में बहुत-सी धारणाएं बना

ली थीं। पर जब पुस्तक पढ़ी तब उन होशियार, रामगढ़ के राजघराने से सम्बन्धित महाशय की बातें बिल्कुल ही गलत निकलीं। जिन्हें वे मर्दानसिंह की रानी हजूरी का 'हजूरिया महल' बता रहे थे वह रामगढ़ की प्रसिद्ध राज-नर्तकी गुलबदन की हवेली निकली। सती का चौरा राजा मर्दानसिंह की घोड़ी का चबूतरा था। मेरा सिर घूम गया और मैंने किताब बन्द कर दी।

सिर्फ यह सोच रहा था कि आज का इन्सान कितना पतित हो गया है। उसके लिए जिन्दगी केवल झूठ है, फरेब है, बेईमानी है, गद्दारी है। सत्य उसके लिये मर गया है। कितना गिर गया है आज का इन्सान !

"पर नहीं", मेरा अन्तर मुझसे बोल रहा था, 'मनुष्य स्वयं नहीं गिरता वह गिरा दिया जाता है। वह स्वयं नहीं बदलता बल्कि परिस्थितियां ही उसे बदल डालती हैं। वेदना का बोझ उसकी स्वतंत्र सत्ता को चूर-चूर कर देता है। इन्सान के जर्द चेहरे पर जमी हुई जमाने की गर्दिशों की धूल उसकी वास्तविकता को ढंक लेती हैं। युग-युग से संचित आशाओं और अरमानों का धुआं ही उसको धूर्त बना देता है।'

समर्पण

०

हृदय नारायण

०

सामाजिक सेवा, अभिनय और चित्रकारी में विशेष रुचि है।
'पूर्णिमा' तथा 'पचास हजार रुपये' आपके प्रकाशित
कहानी-संग्रह हैं। एकांकी और नाटकों का भी
सृजन किया है। रचनाओं का प्रकाशन पत्र-
पत्रिकाओं में होता रहता है। आज-
कल आप केन्द्रीय उत्पादन,
भा र त स र का र,
मुजफ्फरपुर में
निरीक्षक
हैं।

●

चैत की गर्म हवा की आभास मिलने लगी थी। पेड़ पौधों से पत्ते झड़ने लगे थे और इस नीरव और उदास पतझड़ में शोभा का दिल घबड़ा उठा। हाल ही ससुराल आई थी जहाँ उसकी बूढ़ी सास थी और उसके पति थे। घर छोड़ वह पास बगीचे में जाती और तालाब की सीढ़ी पर बैठ जाती और अपना समय अधिकतर वहीं बिताती।

एक दिन शोभा तालाब के किनारे बैठी थी। पीछे की ओर से अमर आ पहुंचा।

शोभा मूर्तिवत बैठी रही और अमर के पहुँचने की प्रतिक्रिया की छाप चेहरे पर नहीं होने दी। पर शोभा को लगा कि धीरे-धीरे सरकती एक बाँह उसकी कमर को घेरती आ रही है और साँस गर्दन को छूने लगे हैं।

अमर ने उसकी कमर से लगे हाथ को हटा लिया। अपनी आँखें उन दोनों आँखों उन दोनों आँखों में डाल दीं। वे उस दृष्टि की राह से एक दूसरे

के अन्तरम को झाँकने लगे । फिर उसमें दोनों अपने मन के उठते कितने ही प्रश्नों के उत्तर ढूंढ़ने लगे ।

सहसा शोभा चौंक सी उठी । अपने दोनों हाथों से अमर को दूसरी ओर ढकेल दिया, फिर स्वयं गिरते-गिरते बची । वह वहाँ से भागी जैसे यम के शिकंजे से छूटी हो । वह अपने बिछावन पर जा रुकी, जहाँ वह फूट-फूटकर रोने लगी ।

जब बहुत रो चुकी तो वह उठ खड़ी हुई । आँखें बन्दकर काँपते स्वर में स्वत: ही बुदबुदाने लगी—भगवन् आपकी साक्षी में जो सिन्दूर माँग पर सजाया गया, उसे कभी अपवित्र नहीं होने दूँगी । मुझे यह शक्ति दो जिससे मैं सिन्दूर की रक्षा कर सकूँ ।

वर्षा समाप्त हो रही थी और ठंड के दिन निकट आ रहे थे । अमर दो सप्ताह पूर्व वाराणसी गया था और अभी तक उसकी कोई सूचना नहीं मिली थी कि वह कब लौट रहा है ।

अकस्मात अमर अपनी माँ के कमरे में प्रविष्ट हुआ । आते ही उसने माँ से प्रश्न किया—शोभा कैसी है ? माँ को यह प्रश्न अच्छा नहीं लगा और दीर्घ साँस लेकर रसोई घर की ओर चल पड़ी । अमर शोभा के कमरे में गया पर वह वहाँ नहीं थी । फिर खड़ा होकर उसने कुछ अनुमान लगाया और पास के बगीचे में चला गया । अमर ने उसे वृक्ष की छाया में बैठा पाया । उसके हाथ में गीता थी और सफेद साड़ी में संगमरमर की मूर्ति थी । अमर को जैसे दिल में ठेस लगी । फिर भी उसने अपने को सम्भालते हुए हाल-समाचार पूछा । उत्तर में शोभा ने अपने सर को हिला दिया । उन बड़ी-बड़ी आँखों में आँसू भर आए ।

अमर पास बैठ गया । करुण दृष्टि से शोभा को देखा फिर कहा—"मैं तुमसे प्यार करता हूँ ।" शोभा के चेहरे पर लाली दौड़ आई । उसने अपनी गर्दन नीची कर ली और सर गीता पर टेक दिया ।

"शोभा !"अमर ने कहा—"मैं प्रेम में पागल हूँ । अब भाग्य से खिलवाड़ करना उचित नहीं । अतीत की बातों को छोड़ दो । अब नये भविष्य के निर्माण हम दोनों लग जाएँ । शोभा तुम मेरी पत्नी हो ।

"मैं कभी तुम्हारी पत्नी नहीं हो सकती। हम लोगों को पति-पत्नी का सम्बन्ध जोड़ने का अनायास प्रयास नहीं करना चाहिए। मेरे माँ-बाप की जबरदस्ती हम लोगों का धर्मच्युत नहीं कर सकती।" और उसकी आँखों में आँसू छलछला आये।

"मैं जानता हूँ"—अमर ने नम्रता से कहा—तुम किसी को प्यार करती हो। काश, तुम अपने प्रेमी का पता दे पाती, विश्वास रखो मैं समाज का ख्याल नहीं करता और तुम्हारा पुनर्विवाह करा देता। तुम आखिर मेरे जीवन में क्यों आई ? एक मात्र क्या मेरी बर्बादी के लिए ?"

अमर का गला भर आया आँखों में आँसू छलक उठे। साथ ही शोभा की आँखों में आँसू की अविरल धारा फूट पड़ी। फिर अमर ने कुछ साहस बटोरते हुए कहा—"इसके पूर्व मेरी भी शादी हो चुकी है। पर आह: वह भी एक अद्भुत घटना है।"

शोभा आशान्वित हो उसकी ओर देखने लगी। इस समय उसकी आँखों से आँसू की धारा रुक चुकी थी। "मैंने स्वयं वह शादी नहीं की थी।" अमर ने कहना आरम्भ किया—"लगभग तीन साल हुए, मेरी बुआ का बड़ा लड़का रमेश, उसकी शादी में मुझे जाना पड़ा। फिर शहर से एक ग्राम में जाना था। रेल और बस का रास्ता छुट चुका था। मैंने बैलगाड़ी से जाना पसन्द किया। मेरी गाड़ी के बैल बहुत मन्दगति से चल रहे थे। परिणामस्वरूप मैं कोसों पीछे छुट गया और रात का अन्धकार छा गया।

"मैं रास्ता खो चुका था और गाड़ी का एक पहिया बड़े गड्ढे में फँस चुका था। मुझे कुछ दूर पर धीमी रोशनी दिखाई पड़ी। मुझे प्रतीत हुआ हम एक गाँव के पास हैं। गाड़ीवान से कहा—मैं गाँव जाकर कुछ लोगों को सहायता के लिए बुलाता हूँ। मैं उस रोशनी की ओर चल पड़ा। कुछ दूर चलने पर कुछ लोगों की चहल कदमी का आभास मिला। मैं आर्यसमाज मन्दिर पहुँच गया जहाँ रोशनी हो रही थी।

"रास्ता यह है महाशयजी"—एक साथ अनेक आवाजें आईं।

"चुपचाप मैं मन्दिर में प्रविष्ट हुआ। दो व्यक्ति मेरे सामने आए सक्रोध उन्होंने कहा—'तुम्हें इतनी देर क्यों हुई ? लड़की दो दिन से भूखी है और तुम्हारे नाम पर जान दे रही है।' यह सुन मैं घबड़ाया। सुध-बुध भी खो बैठा।

मैं भागने वाला ही था कि दोनों पहलवानों ने मुझे कस कर पकड़ा। मैंने कहा—आपको गलत फहमी हो गई है। मैं दूसरी बात बोल ही नहीं पाया था कि मेरी पीठ पर दोनों पहलवानों ने दो चार हाथ दे मारे। चार पांच दीप जल रहे थे और उसकी रोशनी में मैंने देखा—जमीन पर एक नवयुवती अचेत पड़ी है।

'तुमने इस मामूली बच्ची को मार ही डाला। वह औरत बोली तुम्हारे बाप को धन चाहिये, मोटर साइकिल चाहिये। फिर इसका बाप तो तुम्हें देख ही नहीं सकता है वह तो तुम्हारा खून करने को तैयार है। भागकर हमलोग तुम्हारे कहने से आए; फिर तुम नखरा·····'वह औरत सक्रोध बोल रही थी।

मैं कुछ बोलना ही चाहता था कि पीछे दोनों पहलवानों की आंखें देखकर चुप हो गया। घिग्घी बंध गई। इतने में पण्डित जी आये। बाद में उस औरत ने पंडित जी के इशारे पर नवयुवती को ऊपर उठाया। उसे मेरे बगल में बैठा दिया गया। फिर पंडित जी मंत्रोच्चारण में लग गए। वह नवयुवती अचेत मेरे कन्धे पर पड़ी रही।

हम शादी-शुदा होकर उठने ही वाले थे कि मेरी उस पत्नी ने मुझे देखा और चिल्ला पड़ी—'हाय सर्वनाश हो गया। यह मेरा अनिल नहीं है। 'हे भगवान' और मूर्छित होकर गिर पड़ी।

फिर क्या था। एक साथ स्वर निकला—बदमाश, आवारा·······मुझे काटो तो खून नहीं। फिर प्राणरक्षा की बात आई। मैं विद्युतगति से उछल कर भाग निकला। भगवान की कृपा हुई और मैं बिना विघ्न बाधा के आर्य मन्दिर से बाहर हो गया।

"हे भगवन्"—शोभा चिल्ला उठी। "और तुम्हें यह पता नहीं कि तुम्हारी पत्नी किस परिस्थिति में दिन काट रही है?" शोभा के चेहरे पर आश्चर्य और अद्भुत प्रसन्नता उभर आई।

"मुझे पता नहीं।"—अमर ने कहा। मुझे पता नहीं कि वह कौन थी, मैं यह भी नहीं जान सका कि वह मन्दिर किस स्थान में है, जहां मेरी शादी हुई थी। रात भर जंगलों में भटकता रहा।

"मेरे भगवान" शोभा ने विस्फारित आंखों से उसे देखा। फिर उसने कहा—तो क्या तुमने उस स्थान के साथ अपनी पत्नी को भी भुला दिया? फिर शोभा चिल्ला कर बोली—"हे भगवान" वह तुम्हीं थे। और तुम मुझे पहचान नहीं रहे हो। मैं तुम्हारी वही हूं, मेरे स्वामी।

दोनों के चेहरे कौतूहल और प्रसन्नता से भर गए। दोनों एक दूसरे के बाहुपाश में आनन्द विभोर हो गए। उनके आत्म-समर्पण की उस वेला में सफेद कबूतर के जोड़े अपने पंख फटफटा रहे थे।

प्रतिमा

०

प्रोमानन्द ए० सारस्वत

०

जन्म तिथि—१५-३-१९३२ ई० है। आर्ट्स कालेज वल्लभ
विद्यानगर (गुजरात) में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं।
साहित्य की सभी विधाओं में लिखा है। 'चिता'
और 'आलाप-प्रलाप' आपकी प्रकाशित
पुस्तकें हैं। कविता, कहानी की
दो तीन पुस्तकें शीघ्र
प्रकाश में आ
रही हैं।

'कास्टिंग' सफल उतरा। महामानव गांधी की कांस्य-प्रतिमा आज पूर्ण हुई।

कलाकर ने जड़ को चेतन कर दिया—स्वयं भू बन गया था। कला की जीत थी; कलाकार मत्त था लेकिन संयत।

बुद्ध बना, नटराज बना, राम और कृष्ण बने; किन्तु कलियुग के महामानव को मूर्तिरूप देने वाला यह प्रथम कलाकर—जिसे जनश्रुति 'बाबा' नाम से पहचानती है जीवन की हर पहेली को इसने बूझा, हर रस का रसास्वादन किया; किन्तु अपने ढंग से निर्लिप्त रह कर। उस दिन उसका 'कॉस्टिंग' पूरा हुआ था। गांधी जी की पैंतालीस फीट की कांस्य-प्रतिमा सफल बनी थी।

मूर्ति में लालित्य था, जीवन था, प्राण था। देखने के लिए हजारों लोग शहरों से, गावों से, विदेशों से आ पहुंचे थे।

सहस्र कमलों की भांति आच्छादित कलायोगी 'बाबा' ने देखा एक यौवन को एक आकर्षण, एक गहरा खिचाव। आंखें मिलीं, हट गई।

मधुरिका इकलौती पुत्री थी, युवती और कुमारी। रामप्रसाद वकील का खानदान बहुत प्रसिद्ध था। सभी सुसंस्कृत और पढ़े लिखे थे। मधुरिका ने निश्चय किया, वह भी 'कलाकेन्द्र' में शिक्षा प्राप्त करेगी।

नगर से नित्य 'हडसन' उसे बाबा की वनस्थली तक लाती। तीन-चार घण्टे तक अध्ययन चलता और फिर मधुरिका लौट आती।

मधुरिका का क्रम अवरुद्ध हुआ, अनियमित। कभी प्रातः कभी सांय, कभी मध्यान्ह। बाबा ने कई बार समझाया—किन्तु नियम नहीं आने पाया। महलों में पली बालिका झोंपड़ी की ओर आकर्षित होती गई।

निरभ्र आकाश में बादलों ने सूर्य को हरा दिया था। मयूर का नृत्य और 'पी कहाँ ? डूबते सूर्य को अपनी प्रतिमा दिखाने का मौका नहीं मिला। मधुरिका आज प्रातः से ही सन्तप्त थी वातावरण ने उसे और भी अशान्त कर दिया था। कलान्द्र के त्रिकोण कलामय 'अतिथि-गृह' में ही वह रुक गई।

बाबा दिन भर का थका। स्वप्न की कला में विश्राम ले रहा था।

द्वार उन्मुक्त हुआ तो बाबा की चेतना चेती। चन्द्र के मधुर प्रकाश में बाबा ने देखा—मधुरिका कला का योगीराज स्तंभित गम्भीर, किन्तु दृढ़ वाणी गूंज उठी—'क्यों मधुरिका, रात्रि के सुनसान वातावरण में कोई नई कल्पना सूझी क्या ?'

वह संयत हो बोली—"बाबा ! आज रात मुझे एक अद्भुत रहस्य···"

"यह उचित स्थान नही शयन-कक्ष विश्राम के लिए होता है।"

"मैं विश्राम चाहती हूँ, बाबा।"

"तुम्हारे लिए तुम्हारा विश्रांति-गृह अलग है··········जाओ, कला केन्द्र मर्यादा की रक्षा करो········"

मधुरिका का रुका हुआ आंतरिक आवेश उभर आया। नियन्त्रण समाप्त हो गया। वह रुक न सकी। यह कहती हुई बाबा के आलिंगन-पाश में बंधने को दौड़ पड़ी "मेरी शांति तुम हो, तुम········"

बाबा ने उत्तेजित देह अपने बलिष्ठ, किन्तु कोमल हाथों से पीछे धकेल दी।

"जाओ, कला का अपमान करने वाली, पातकी। तुमने आज विश्व की उज्ज्वलता पर कालिख पोत देने का अक्षम्य साहस किया है—साधना को

वासना में लिप्त करने वाली राक्षसी,.........आज शंकर अपना ताण्डव करना चाहता है.......इस पवित्र स्थान पर नागवंश की कलंकिता ! तू साधक को च्युत करने आई है........"

मधुरिका निराश मृगी-सी लौट गई, एक प्रतिशोध—दृढ़ता । बाबा स्थित-प्रज्ञ ।

जहर खा लिया । शहर के एक कोने से दूसरे कोने तक बात दौड़ गई ।

रामप्रसाद वकील के परिवार में यह पहली अनहोनी घटना थी । वकील के वृद्ध पिता अश्रुमग्न थे । वकील स्वयं हतप्रभ था । माधुरी की अवस्था शोचनीय हो गई थी—उसने तो अपने रक्त से उत्पन्न किया था ।

पुलिस ने लाश को अपनी देख-भाल में ले लिया था । मुख्य चिकित्सक ने विष खाकर आत्म हत्या की रिपोर्ट दे दी ।

शाम के सात बजे शव को दाह की आज्ञा प्राप्त हुई ।

आँखें फाड़-फाड़ उस बुझती हुई चिता के ढेर में सुषुप्त राख को पहचानने का प्रयास कर रहे थे ।

किसी के भर्राये कण्ठ से ध्वनि निकली, धीमी और कई हाथों ने फूल बीनने प्रारम्भ किये । जिनके स्पर्श से हृदय की धड़कनें कांप रही थी । फूल बीन लिये गये और अपनी मंथरता के भार से स्वयं मौन हो गई गंगा की तरंगों में वे निस्तब्ध, पर जीवित अवशेष बह चले—दूर, दूर, दूर अनन्त की ओर ।

छप् छप् । गंगा का एक किनारा टूट कर गिर पड़ा और उसके साथ ही सिसकियों की अगणित ध्वनियां वायु-मण्डल में छा गईं । बाबा कगारे पर खड़ा रो रहा था । आँखें बन्द थीं । पर आंसुओं की बूंदे टप-टप उसी स्थान पर पड़ीं जहाँ गंगा में उसके फूल बहाये गये ।

और धरती से आकाश के नक्षत्रों तक बढ़ती हुई एक कांस्य-प्रतिमा फिर ढलने लगी—मोम के ऊपर तरल कांस्य और ठोस मूर्ति ।

लेकिन इस बार यह प्रतिमा किसी महानमानव की नहीं थी ।

विधान-मार्तंड

०

कपिलदेवसिंह परिहार

०

जन्म तिथि—२८ नवम्बर, १९०९ ई० है और जन्म-
स्थान—सुखपुर, बलिया (उ० प्र०) है। आजकल
आप जिलापरिषद, देवरिया में कार्यरत हैं।
'अजमी बचाओ', 'प्रेमोपहार' आदि
४ पुस्तकें प्रकाशित हैं। रच-
नायें पत्र-पत्रिकाओं में
प्रकाशित होती
रहती हैं।

"आपने पूरी फीस अदा कर दी ?" विधान-मार्तण्ड ने पूछा।

"जी हाँ ? परन्तु दस हजार लेकर पाँच हजार ही की रसीद मिली है,"। पेश करते हुए मुनीम मिश्री चन्द ने उत्तर दिया।

"कानूनन ऐसा किया गया है यह सारी रकम मुझे ही मिलेगी।"

"मैं धोखे में गलत जगह तो नहीं आ गया ?' वकील की ओर बार-बार घूरते हुए मुनीम ने पुनः पूछा।

"क्यों, क्या बात हो गई।"

"मैं, विधान-मार्तण्ड जी के यहाँ आया था परन्तु आप संकट-मोचन जी की भाँति दीख रहे हैं।"

"जी मैं दोनों ही हूँ। जनता मुझे संकट मोचन के नाम से ही पुकारती है परन्तु गत वर्ष सरकार ने मुझे विधान-मार्तण्ड की उपाधि दे दी।"

"सचमुच आप गरीब परवर हैं।" मिश्री चन्द ने संतोष की साँस लेते हुए कहा।

मुवक्किल को संतुष्ट जान विधान-मार्तण्ड ने ध्यानपूर्वक कागज पढ़ा। उसमें मिश्रीचन्द का बयान पढ़ कर उन्होंने अफसोस करते हुए पूछा—

"नीचे की अदालत में जो कुछ बयान आपने दिया है, वह सही है ?"

"जी हाँ।"

"आप रोज एक कीमती थान रोशन दान में छिपा कर चुराते थे, जिनकी कुल कीमत एक लाख आंकी गई है।"

"जी हाँ।"

"आपने ऐसा क्यों किया ?"

"इसलिये कि जब मेरे मालिक, आय-कर चोरी करके, तस्कर व्यापार करके मिलावटी खाद्य-पदार्थ और दवाइयाँ बेच करके, अपार धन और कीर्ति पैदा करते थे, तो मैंने भी उसी लाभ के लिये वही रास्ता अपनाया।"

"आपने उनके खाने वाले ढंग को तो अपना लिया परन्तु पचाने वाले ढंग को तो नहीं सीखा। दावत और दान सब का मुँह, मुहर बन्द कर देते हैं।"

"अब क्या होगा। क्या मैं छूट जाऊँगा ?"

"आप छूट ही नहीं जायेंगे, हर्जाना भी पायेंगे। मेरा दावा है दुनिया में किसी विधान के अन्दर कोई सजा नहीं पा सकता। आप सेठ के परिवार की स्त्रियों को अच्छी तरह पहचानते हैं ?"

"जी हाँ।"

"कोई चिह्न विशेष आप को ज्ञात है जो उनके गुह्यांग पर हो।"

"मैंने इतने गौर से उन्हें कभी नहीं देखा है।"

"अपनी माँ या घरवाली से जाँचकर तुरन्त बतलाइये। उनसे जाहिर न कीजिये कि यह भेद की बात है क्योंकि स्त्रियों के हृदय में बात नहीं पचती।"

मिश्री चन्द अपनी घर वाली से बातचीत के दौरान में बड़ी कुशलता से जान लिये और आकर वकील साहब से कान में बतलाये। सुनते ही विधान-मार्तण्ड उछल पड़े। बतलाया कि न्यायाधीश के सामने मैं जो प्रश्न पूछूँ उसका उत्तर 'हाँ' में ही दीजियेगा।

जब लोगों को मालूम हुआ कि महाशंख पति की ओर से विधान चन्द और उनके मुकाबिले में मुनीम की ओर से विधान-मार्तण्ड सेशन में बहस

करने के लिये आ रहे हैं तो पेशी के दिन न्यायालय दर्शकों से खचाखच भर गया।

विधान-मार्तण्ड ने पूछा—"आपने लोअर कोर्ट में पुलिस के भय तथा दबाव से अपराध स्वीकार किया था ?"

"जी हाँ।"

"सेठ जी की पुत्र वधू चोरी से सामान रोशनदान में रख देती थी।"

"जी हाँ।"

"क्या वह आप से प्रेम करती थी ?"

"जी हाँ।"

"हाजिर करने पर आप उसे पहचान सकते हैं।"

"जी हाँ।"

"उसकी पहिचान के कोई खास चिह्न बता सकते हैं।"

"जी हाँ।"

"उन चिह्नों को आप अच्छी तरह से जानते हैं ?"

"जी हाँ।"

"न्यायालय के सामने उन्हें प्रकट कर सकते हैं ?"

"प्रकट कर देने से मुझे सन्देह है, कहीं वह गायब न कर दी जाय या दूसरी लाकर खड़ी न कर दी जाय।"

विधान मार्तण्ड ने न्यायाधीश से निवेदन किया, "श्रीमान् ! मेरी बहस यहीं समाप्त होती है परन्तु साथ ही यह प्रार्थना है कि अपराधिनी को वारन्ट बिला जमानत जारी करके तत्काल गिरफ्तार करने का आदेश दिया जाय।"

इस पर पद्म-विभूषण के वकील विधान चन्द्र ने न्यायालय से प्रतिवाद किया।

"मैं आदेश देता हूँ कि बहू को सही रूप में उपस्थित कराने का उत्तरदायित्व न्यायालय का है। मिश्री चन्द जी। आप इन रहस्यमय चिह्नों को बतलाइये।"

"उसकी दाईं छाती की जड़ और बाईं जाँघ के पट्ठे में घाव का निशान है।" मिश्री चन्द ने कहा।

वहीं खड़े पद्म-विभूषण का चेहरा शर्म से लाल गया। हो उन्होंने न्यायालय से निवेदन किया—"मेरी प्रार्थना है कि बहस बन्द करा दी जाय क्योंकि मेरी उपाधि की प्रतिष्ठा भंग कराई जा रही है।"

विधान-मार्तण्ड ने उत्तेजित होकर प्रतिवाद किया "माननीय न्यायाधीश ! पद्म:विभूषण झूठे आरोप लगाकर मेरे क्लायंट की बेइज्जती करा रहे हैं। जब आप बीती तो इनको जगबीती का ख्याल हो रहा है।"

पद्म-विभूषण घबरा गये। वे बार-बार उंगलियों से खोद-खोद कर अपने वकील से हठ करने लगे कि किसी मूल्य पर इस विवाद को बन्द कराया जाय।

विधान चन्द्र ने मजबूर होकर कोर्ट से दरख्वास्त की। "माननीय न्याया-धीश ! यदि पांच मिनट की मुहलत दी जाय तो मामला सुलझ जाय।"

"यदि विरोधी वकील राजी हों तब ?" न्यायाधीश ने निर्णय दिया।

"मैं कदापि नहीं चाहता।" विधान-मार्तण्ड ने लोहे को गरम जान कर प्रहार किया।

"आपका सारा हर्जाना चुकाऊंगा" विधान-चन्द्र ने आंखें मारते साग्रह अनुरोध किया।

"तब चलें, हम सब बाहर निबटलें।" विधान-मार्तण्ड ने अपनी सहमति प्रकट करते हुए कहा।

दोनों दल न्यायालय कक्ष से बाहर आये। निकलते ही पद्म-विभूषण उबल पड़े, "विधान-मार्तण्ड जी ! दुनिया में सारे फसाद की जड़ कानून है। इस गाड़ी को वकील जिधर चाहे उधर मोड़ दे।"

"जी हां। संसार में धर्मा-धर्म, कर्त्तव्या-कर्त्तव्य, न्याया-न्याय और सत्या-सत्य का संतुलन कायम रखने के लिये ही वकील बने हैं।" मार्तण्ड ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया।

"मार्तण्ड जी। सेठ जी भावुक हैं। इनकी बातों पर वजन न दीजिये। हमें आपस में निबटना है। हां आप कितना हर्जाना लेकर सुलह करेंगे ?" विधान चन्द्र ने साग्रह पूछा। "दस लाख।" उत्तर मिला।

"अरे बापरे इतनी रकम से जो मेरा हार्ट फेल हो जायेगा। सेठ जी विधान-चन्द्र का सहारा लेते धस्स से बैठ गये यदि आप मान-हानि का दावा करते तो कितना चाहते ?" मार्तण्ड ने प्रश्न किया।

सेठजी एकटक ताकते रह गये उनकी जबान न खुली। विधान-चन्द्र ने मार्तण्ड का हाथ दबाया। दोनों ने काना-फूसी की, जन्म जन्मान्तर के अगाध मित्रों की भांति। पांच लाख पर सौदा पटा। चेक साइन करते सेठ की आंखों से आंसू निकल पड़े। दोनों ओर से समझौता दाखिल हो गया।

नई भाभी

०

श्यामनारायण बैजल

०

आप सन् १९३० ई० से साहित्य सृजन में रत हैं और 'एकान्त' मासिक के आप संस्थापक हैं। हिन्दी में आपकी कई पुस्तकें प्रकाशित हैं। कुछ और पुस्तकें शीघ्र प्रकाशित हो रही हैं। 'गीता' पर आपने विशेष अध्ययन किया है इस संबंध में आपने अनेक लेख लिखे हैं जो पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं।

●

मेरी दशा अजीब हो रही थी। रोज सोचता कल जाकर नौकरी से स्तीफा दे दूंगा। क्या धरा है इस १५०) वाली नौकरी में ? वकालत पास हूं ही, वकालत कर लूंगा। कहां तक नहीं चलेगी ? क्या १५० रुपये भी नहीं मिलेंगे ? क्या सब वकील मक्खियां ही मार रहे हैं ? वकीलों की कोठियां खड़ी हैं। वकील मोटर पर जा रहे हैं। उनके यहां टेलीफोन लगे हैं। तो क्या मेरी वकालत रोटी लायक भी नहीं चल सकेगी ? आखिर एक दिन चुपचाप जाकर स्तीफा दे दिया। हमारे अफसर ने कहा—सरकारी नौकरी भाई रे कहां मिलती है ? भरी थाली पर लात लगा रहे हो, सोच लो। मैं तीन चार दिन तक इसे फारवर्ड नहीं करूंगा।"

वह चुप हो गये। मैं चला आया।

स्तीफा जिस दिन मंजूर हुआ उसके दूसरे दिन मैंने घर चलने का विचार कर लिया था। असबाब बंध गया था तांगे पर बैठकर मैं स्टेशन आ गया।

गाड़ी पर बैठते ही मेरी दुनिया में उथल-पुथल होने लगी। मैं क्या करूंगा घर पहुंचने पर सैकड़ों प्रश्न होंगे।

एक अजीब किस्म का भय सिर पर सवार हो गया। नौकरी छोड़ दी। क्या मैंने गलती की? मुझे ऐसा लगा कि जैसे नौकरी छोड़ने से मैंने अपने ऊपर पहाड़ रख लिया हो और मैं दबा जा रहा हूं।

लखनऊ पर गाड़ी करीब-करीब खाली हो गई। केवल ढाई मुसाफिर मेरे डिब्बे पर चढ़े। एक बुड्ढा, एक छोटा बच्चा और एक सुन्दर सी बहू। मैं बच्चे को देखने लगा। कैसा सुन्दर बच्चा था। इसे क्या फिक्र थी?। मस्त था। वह कौनसी नौकरी छोड़ कर आया था? उसे कौन-सी चौपड़ बिछानी थी? पर मैं! और यह बुड्ढा ५०-५५ का होगा।

कोई कह रहा था। 'एक लड़का था। क्या बताऊं बाबू, सब कुछ है। पैसा है, धन है, गांव है, जायदाद है, मकान कोठियां हैं, पर आज सब में आग लगा कर आ रहा हूं। बस यह बच्चा है लड़के का लड़का है मैडीकल कालेज में इसके बाप का इलाज कराने आया था........।' और इसके बाद बुड्ढे की आंखों में अविरल धारा बह पड़ी।

वह मेरी कौन है? यह बच्चा, यह बुड्ढा मेरा कौन है? इन गम के मारों से मेरी क्या रिश्तेदारी है? इन्सानियत कितनी जल्द गैरों को अपना बना लेती है!

दो तीन स्टेशनों के इस रिश्ते में भी कितना दर्द और बैचेनी थी। और सबसे बड़ी सान्त्वना यह थी कि मेरा गम कुछ भी नहीं रहा था। मैं चित्त लेट गया। ऊपर रक्खे हुये बिस्तरबन्दों को देखने लगा। एक बिस्तरबन्द एक कोने में लिपटा पड़ा था। मानों दुखों की मारी इस वधू ने मेरे गमों को लपेट कर एक कोने में फेंक दिया हो।

मुझ में बल आ गया था। जीवन का मार्ग दुर्गम है। मैं मनुष्य हूं यदि यह स्त्री इतने बड़े गम को सह सकती है तो क्या मैं इतनी भी सहन शक्ति नहीं रखता हूं कि इन छोटे-छोटे झकझोरों का मुकाबिला कर सकूं?

थोड़ी देर बाद मैं इन ढाई मुसाफिरों से अलग हो गया कुली। स्टेशन, रिक्शा और फिर घर तक ज्यों-ज्यों कदम आगे की ओर बढ़ते गये, त्यों-त्यों उन ढाई मुसाफिरों की तस्वीरें धुंधली होती गईं। पर उनका ख्याल, वह बल

प्रदान करने वाला टानिक जो उस विधवा की परिस्थितयों ने मेरे रुधिर में संचारित कर दिया था। मैं अपनी देह से अलग नहीं कर सका।

मेरी मुसीबत धीरे-धीरे हल हो गई वकालत ने सब ही रूप दिखाये। नहीं चली, खिसकी, ढुलकी, रिंगी, चली और फिर तेजी की रफ्तार अख्त्यार करने लगी। शुरू-शुरू में हर प्रकार की कमेन्टरी सुनी। उन कलेजे और हतोत्साहित शब्दों की पुनरावृत्ति उचित नहीं। कोई कहता, हमने पहले ही कहा था बँधी नौकरी को नहीं त्याग करना था? वकालत के लिए दिमाग और टेक्ट चाहिये?

बात पुरानी हो गई। लोग मेरी असफलता और सफलता की कहानी को भूलने लगे। एक समय ऐसा भी आ गया कि लोगों को यह भी ध्यान नहीं रहा कि मैं कभी नौकर था।

दिन बीतते चले गये। सब पुराने चित्र धुंधले हो गये। फिर एक दिन मेरा पुराना साथी मिल गया। बचपन का मित्र था। शादी न करने का प्रण कर चुका था। मुझसे मिला। पुरानी स्कूली अनुभूतियाँ चमक उठीं और हम दोनों कुछ देर के लिए नन्हे मुन्ने हो गये।

वह कह रहा था—"यार तूने तो नौकरी करली थी, पर बाद में मुझे पता चला कि वकालत कर ली है। बस इसीलिए मिलने आया हूं। मैंने एक कम्पनी फ्लोट कर ली है और उस सिलसिले में एक लीगल एडवाइजर की आवश्यकता है। ३००), ४००) रुपये महावार मिलेगा और स्वतन्त्र प्रेक्टिस की खुली छूट होगी।"

जॉब बुरा नहीं था। पास में खड़ी श्रीमती जी की भी बाँछें खिल उठीं। क्योंकि वह कम्पनी उनके ही नगर में फ्लोट हुई थी। अपने मैके चलकर रहना होगा। पैसा मिलेगा। वकालत भी चलेगी।

खाना हुआ तरह-तरह की बातें हुईं और बातों ही बातों में मैंने उनसे उस ट्रेन वाली घटना का भी जिक्र किया जिसने मुझे जीवन के इस मोड़ पर ला दिया था।

मेरे मित्र ने कहा—"छोड़ भी जिक्र, जिस प्रकार नौकरी छोड़कर तुमने अपनी समस्या हल कर ली होगी। वैसे ही उसने भी हल करली होगी। दुनिया में कोई कठिनाई, कठिनाई नहीं। हर कठिनाई बुद्धिमान व्यक्ति के लिए सीढ़ी है।"

मैंने कहा—"तुम्हारा क्या मतलब है ?"

उसने कहा—"शादी कर ली होगी।"

मेरी पत्नी का उपदेश भी बहस को ठन्डा नहीं कर सका और हमारी बहस गर्मागर्म होती गई। अँग्रेजी की हर प्रकार की गाली का प्रयोग हो लिया और मेरा पुराना मित्र अपना-सा मुँह लटकाये स्वयं चला गया।

वह चला गया। पर रात भर हमारी पत्नी असंख्यों प्रकार के डिप्लोमे हम पर बर्षाती रहीं। बोलीं—"तुम तो नौकरी ही करते। तुम्हें न जाने किसने वकील बना दिया है। एक औरत के पीछे बहस करना, लड़ना और तूफान खड़ा कर लेना और अपनी लीगल एडवाइजरी पर लात मारना कहाँ की बुद्धिमानी थी ?"

आठ दिन बाद। कचहरी से आने पर मेरे मित्र की चिट्ठी मिली। लिखा था—'बहस को तुम भूल ही गए होगे। गर्मा-गर्मी में ऐसा हो ही जाता है और साथ ही यह एपआन्टमेंट लेटर भेज रहा हूँ। तुम्हें मेरी शपथ है, इसे ठुकराना नहीं। विश्वास रक्खो, प्रेक्टिस भी यहाँ खूब चल जायेगी। मैंने और बढ़ा कर वेतन भी ६००) तय कर दिया है और आशा है कि मिल एरिया में बङ्गला भी मिल जायेगा।'

श्रीमती जी तो खुश थीं। मैंने कहा कि मैं उसकी आदत जानता हूँ। वह भरभरिया है। उसके दिल में कुछ नहीं रहता। श्रीमती जी ने मेरी इस बात को सुना तो, पर ऐसा मुँह बनाया मानों कह रही हों कि तुम कौन से कम हो। पर हम चुप रहे। बात बढ़ाने का मौका न था। खुशी की घड़ी को गमगीन रूप भी नहीं देना था।

सब कुछ ठीक हो गया और वहाँ जाकर हम रहने लगे। वहाँ ही हमें पता चला कि हमारे मित्र ने शादी कर ली है। बड़ा आश्चर्य हुआ। क्वाँरे रहने का उपदेशक मेरा मित्र किस प्रकार अपने पैर में बेड़ियाँ डाल सका।

मैंने कहा "मित्र यह शादी कब की ? बुलाया भी नहीं।"

"कुछ ऐसा ही हुआ। बुरा न मानो तो कहूँ ? कहीं लड़ मत पड़ना और लीगल एडवाइजरी और वकालत छोड़ कर भाग चलो, जो मैं आफत में पड़ जाऊँ।"

"मैं शादी नहीं करता, हरगिज नहीं करता पर मैं मजबूर हो गया और एक ऐसी ही लड़की से शादी करली जैसी तुम्हें ट्रेन में मिली थी।

"उसके बुड्ढे श्वसुर को मरे आज कई वर्ष हो गये। वह पुरानी मान्यताओं को मानता था। पढ़ा लिखा था। समझदार पर समाज का भय उसे खा रहा था और शायद उसकी बहू के अगर लड़का नहीं होता तो वह पुरानी मान्यताओं को ठुकरा कर बहू के हाथ फिर पीले करा देता।

वह कह रहा था "बुड्ढे ने जमीदारी बांड्स और अपना कैश रुपया लाकर यह बहुत बड़ी फैक्ट्री मुझसे फ्लोट कराई थी। वह बहू के लिए सब काम ठीक करके मरना चाहता था।

"पर यह सब कुछ होते हुए रात-दिन रोता था। मैं और वह दोनों ही जानते थे कि उनकी बहू साध्वी है। गलत कदम पड़ने का तो प्रश्न ही क्या था फिर भी उसी के रिश्तेदार असंख्यों अफवाहें फैलाया करते थे। बहू को बदनाम करने में कोई कसर नहीं उठा रक्खी थी।"

मैं अपने मित्र की बात बड़े गौर से सुन रहा था।

वह कह रहा था—"और एक दिन बुड्ढा फूट-फूट कर रोने लगा। मैं बाबूजी डूब कर मर जाऊंगा और उसने यह कहकर मेरे आगे एक पत्र पटक दिया। पत्र पढ़ कर तो मैं भी भौचक्का हो गया। किसी नीच रिश्तेदार ने ही ईर्ष्या और जलन के वश उस पर दोष लगाया था। लिखा था नीच बुड्ढे पैसे के लोभ में तू अन्धा हो गया है। धन के जोश में तू जवान बहू को ले जाकर तीर्थ-स्थान कराता फिरता है और तू उसके साथ क्या नहीं करता डूब क्यों नहीं मरता।"

बुड्ढा कह रहा था—"आप हमारी फैक्ट्री चला रहे हैं। बतायें मुझे क्या करना है?, यह मेरी बहू कब तक बदनामी अपने सर पर ओढ़ती रहेगी।"

न जाने उस दिन मुझे क्या हो गया? मैंने कहा "आपको इस लड़के की जवानी इस तरह नहीं गलाना चाहिये। मैं तुमसे क्या कहूं हमें किसी की उम्र इस प्रकार से बरबाद करने का क्या हक है? क्या पता जीवन के बाद क्या होता है या जीवन केवल एक केमीकल प्रोसेस मात्र है। आगामी जीवन की पहेलियां ठीक प्रकार से वेद उपनिषद भी हल नहीं कर पाये तो हम कैसे हल

करेंगे। एक कोमल कली का जीवन नाश करना उसे सब सुखों से वंचित करना भरी जवानी में उसके आगे से थाली खेंच लेना कहाँ का न्याय है ? रहा लड़का जो कोई उसे ग्रहण करेगा वही उसका रक्षक होगा।"

बुड्ढा चुप हो गया। मुझे शायद ऐसा लगा कि यह बकवास मुझे नहीं करनी चाहिये थी।

"कुछ दिन बाद बुड्ढे की तबियत खराब होनी शुरू हो गई और सबको विश्वास हो गया कि जीवन की अन्तिम घड़ियाँ आने वाली हैं। मैं और उसकी विधवा बहू दिन रात उसकी सेवा करते रहे।"

"मौत हमें निकट मालूम हो रही थी। उसकी डब-डबी आँखें मुझ पर कभी लगतीं, कभी अपनी बहू के ऊपर। वह क्या सोच रहा था ? मरने से पहले वह क्या चाहता था ? और यकायक उसने कहा—"मैनेजर साहब मेरी एक इच्छा है। मरने वाले पुरुष की इच्छा है, अन्तिम इच्छा है।"

"हम दोनों से उसकी इच्छा छिपी नहीं थी। वह कह रहा था "मैनेजर साहब आप मेरे लड़के हैं और अविवाहित हैं। मेरी बहू को ग्रहण करना है।" फिर बहू की तरफ देखकर बोले "देख जीवन काटना। मेरी इस अन्तिम बात को मत ठुकराना।"

"मैं चुप रहा जीवन से विदाई लेने वाले आदमी का दिल, किसका साहस है जो दुःखा सके।

बुड्ढा खुशी खुशी विदा हो गया और मैं जन्म-जन्म क्वारा रहने वाला शादी-शुदा हो गया।"

बुड्ढे की बहू वही थी। यह पता चल ही गया और मैं पुरानी मान्य-ताओं में डूबा हुआ व्यक्ति कभी सोचता हूँ कि जीवन में आने वाली प्रत्येक कठिनाई, पुरानी मान्यताओं को रूप देकर नवीन मान्यता स्थापित कर सुलझाई जा सकती है। मैं अपनी इस नई भाभी से मिलकर कितना खुश हूँ।

बहके हुए कदम

०

गंगाप्रसाद गौड़ 'नाहर'

०

जन्म तिथि—१० अगस्त, १६०२ ई० है। १६२४ से १६२६ तक शिक्षक, १६२६ से १६५७ तक रेल विभाग में कार्य। इलाहाबाद हाईकोर्ट से मुख्तारी व रेवेन्यू एजेण्ट के डिप्लोमा प्राप्त किये। नेशनल कालेज लखनऊ से एन०डी० (डाक्टर ऑफ नेचर क्योर) की डिग्री प्राप्त की। १५ पुस्तकें विविध विषयक प्रकाशित हो चुकी हैं। आजकल आप लखनऊ में निवास कर रहे हैं।

बहुत दिनों की बात नहीं है, काशी के विख्यात दशाश्वमेध-घाट पर एक सन्यासी पधारे हुये थे, जो तीन-चार दिनों से संसार की निस्सारता पर धुआंधार लेक्चर दे रहे थे।

एक दिन व्याख्यान समाप्त होने पर जब भीड़ धीरे-धीरे छंट चुकी तो मैंने सन्यासी को एकान्त में पाया। उठकर उनके निकट गया और बिना अभिवादन इत्यादि किये ही कह गया—'महाराज, क्षमा कीजिए, यदि मैं गलती नहीं कर रहा हूं तो आप सन्यासी के अतिरिक्त और कुछ भी हैं।'

'आप कौन हैं महाशय ? आपका इस कथन से अभिप्राय ?' सन्यासी बोले।

अभी-अभी जो व्याख्यान आपने दिया है उसका एक श्रोता हूं। मैंने आपके अन्तर में झांक कर देखा है, वहां असफलता, एवं करुणा का दावानल धू-धू करके जल रहा है। आपको जरूर कहीं ठेस लगी है।

सन्यासी पर मेरे इस वक्तव्य का मन्त्रवत् असर हुआ। अपने को संयत करके बोले—

'मैं अपनी कहानी आपको सुनाऊंगा और अवश्य सुनाऊंगा। आज तक मैंने अपनी कहानी किसी को भी नहीं सुनाई है, मगर आपको सुनाऊंगा। मगर आज समय नहीं है। आप कल सवेरे यहीं पर आजाइयेगा।' सन्यासी ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

मैंने सन्यासी का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, और अपने निवास-स्थान पर चला आया।

दूसरे दिन ! 'मेरी कहानी बड़ी दुःखद है।' सन्यासी ने कहना आरम्भ किया।

'मैं सन्यासी होने के पूर्व एक साधारण आदमी था और फोटोग्राफी का काम करके अपना तथा अपनी स्त्री का जीवन-निर्वाह करता था। मेरे परिवार में और कोई न था। मैं अपनी पत्नी से बहुत प्रेम करता था—और उतना ही प्रेम करता था अपने एक मित्र हरीश को। मेरा यह मित्र भी मेरे ही जैसा अभागा था। शादी उसकी नहीं हुई थी। मैं और पत्नी—दोनों ही उसकी शादी के लिए चिन्तित रहते थे। उसकी शादी न होनी थी, न हुई। मेरे मकान से सटे हुए, किराए की एक कोठरी लेकर हरीश जैसे-तैसे अपने दिन बिता रहा था।

'एक दिन की बात है। मुझे फोटो खींचने कहीं बाहर जाना था। स्टेशन पहुंच कर जब मैंने फोटो खींचने वाले यन्त्रों की देखभाल की तो उनमें एक बहुत आवश्यक यन्त्र की कमी पायी, जिसे मैं घर पर ही छोड़ आया था। क्या करता, उल्टे पांव घर वापस चल पड़ा। उस वक्त बारिश जोरों से हो रही थी। घर पहुंचा। आवाज लगायी। उत्तर न मिला। फिर आवाज लगाई, और इस बार दरवाजा खुला। घर में प्रवेश किया। देखा, मेरी पत्नी के कमरे में हरीश ! पूछा, क्यों हरीश, तुम आज दुकान पर नहीं गये ? उत्तर मिला—'जाता हूं। आज भाभी के सिर में धीमा-धीमा दर्द हो रहा था।

इन्होंने ही रोक लिया। मैं चुप हो गया। जो चीज मुझे लेनी थी उसे ले, पूर्ववत् भागता-भागता पुनः स्टेशन लौट आया। घर से कब चला, स्टेशन कब पहुँचा और कैसे पहुँचा, इस बार इन सब बातों का मुझे ज्ञान ही न हुआ। कुछ प्रश्न रह-रह कर मेरे मस्तिष्क में उठ रहे थे, उस समय ऐसा मालूम हो रहा था, मानो मेरे मस्तिष्क के भीतर समस्त भू-मण्डल बड़ी तेजी से घूम रहा है।

एक दिन अनायास मैं अपनी स्त्री से कह बैठा—'हरीश तुम्हारी तरफ कुदृष्टि रखता है, क्या तुम इसे जानती हो ?'

'रोने-धोने और गिड़गिड़ाने से लेकर मैके जाने की तैयारी तक सब चित्र, सिनेमा की तस्वीरों की भाँति आये और गये।'

'इस घटना के बाद ही मेरे दिल ने कहा, निकल चलने में ही भलाई है। मगर वहाँ से निकलने के पूर्व मैं अपनी स्त्री को यह बता देना चाहता था कि मैं उसे अच्छी तरह पहचान गया हूँ।'

'इस अभीष्ट की पूर्ति के लिए मैंने तुरन्त एक 'प्लान' तय्यार किया और एक दिन अचानक, कुछ दिनों तक बाहर जाने का बहाना कर, मैं घर से निकल पड़ा। वास्तव में मैं कहीं दूर नहीं गया, बल्कि पड़ोस में ही घूम फिर कर पड़ा रहा। एक दिन, कमंद के साथ, लोगों की नजरें बचाता, अपने घर के पिछवाड़े पहुँचा और कमंद के सहारे अपने कमरे की छत पर जा, रोशनदान के समीप दुबक कर बैठ रहा। कुछ ही मिनटों के बाद, मैंने रोशनदान में से झाँककर अपनी आँखों से देखा—मेरी पत्नी और हरीश दोनों ने भोजनोपरान्त साथ-साथ कमरे में प्रवेश किया और साथ ही साथ मेरी चारपाई पर लेट गये। प्रेम-लीला आरम्भ हुई, इधर मैंने 'खट्' से उसका फोटो ले लिया और कमंद के सहारे तुरन्त नीचे उतर नौ-दो ग्यारह हो गया।'

'उस दिन न जाने मेरे बदन में कहाँ से इतनी फुर्ती आ गयी थी कि यह सारा काम मिनटों में ही सम्पन्न हो गया।'

'इस बार जब मैं घर लौटा तो पत्नी को एकान्त में बुलाकर स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि यदि वह साफ दिली के साथ अपना पाप स्वीकार कर लेती है, और भविष्य में उससे हाथ भी खींच लेती है तो अभी कुछ भी बिगड़ा नहीं

है, किन्तु उत्तर में, सत्य कथन के बदले वह लगी शपथ-पर-शपथ खाने। मैंने कहा, मैं तुम दोनों को अब भी उसी तरह प्यार करता हूं जैसे पहले करता था। और यही कारण है जो आज तुम्हारे पापरूपी हलाहल विष का प्याला भी अपने गले के नीचे उतारने के लिये तय्यार हूं। मैं सत्य कहता हूं, आज मेरी जगह पर अगर दूसरा कोई मर्द होता तो तुम दोनों का नामोनिशान, इस पृथ्वी पर से कभी का मिटा चुका होता। इस पर मेरी पत्नी बोली, 'झूठ-मूठ लांछन लगाते तुम्हें लज्जा नहीं आती? मर्द बनते हो तो पकड़ कर दिखाओ, तब मैंने उसका प्रेम लीला वाला फोटो जेब से निकाल कर उसके हाथों में दे दिया। बस फोटो देखते ही उसको जैसे सांप सूंघ गया। उसकी सारी उछल-कूद उसी दम बन्द हो गयी।'

'उसके बाद मैं वहां ठहरा नहीं। तुरन्त बाहर चला गया। वहां से सीधे अपने वकील के पास पहुंचा और अपनी सारी आयदाद, रुपया-पैसा जो कुछ भी अपना था, अपनी स्त्री व हरीश के नाम रजिस्ट्री कर, कागज डाक द्वारा उनके पास भेज दिये, और स्वयं हरद्वार का रास्ता लिया। बस मेरी कहानी यहीं पर खतम होती है।'

इसके बाद सन्यासी ने अपनी झोली में से एक फोटो निकाला और मेरे हाथों में देकर बोले—'यह मेरी स्त्री के प्रेम-लीला वाली फोटो की कापी है जो अब तक मेरी झोली में पड़ी है।'

उस फोटो को देखते ही मैं आश्चर्य के सागर में डूब गया क्योंकि ठीक वैसा ही फोटो मुझे बनारस की एक तपस्विनी ने एक बार दिखाया था। उसने स्वीकार भी किया था कि इस जीवन में उसने इस एक पाप के अतिरिक्त और कोई दूसरा पाप नहीं किया है।

आहट

सरोजिनी कुलश्रेष्ठ

जन्म तिथि–१६३२ ई० है। किशोरी रमण गर्ल्स डिग्री कालेज (मथुरा) में प्रिन्सीपल हैं। आकाशवाणी द्वारा आयोजित 'स्वर बेला' तथा 'रसवन्ती' कार्यक्रमों में बहुधा भाग लेती रहती हैं। कहानियों के अतिरिक्त कवितायें भी लिखती हैं। रचनाओं का समय-समय पर प्रतिष्ठित पत्रों में प्रकाशन होता रहता है।

शीला घर के दरवाजे बन्द करके स्नानागार में घुस गई। नल खोला। क्षण भर पानी गिरने के स्वर में खोई रही, फिर उसे छुआ। छूते ही चिहुंक उठी। पानी गरम था। कुछ देर में जब ठंडा पानी आने लगा तो उसने मुँह धोया कि सहसा उसे लगा जैसे द्वार पर कोई पुकार रहा है। उसने नल बन्द कर दिया और सांस रोककर सुनने की चेष्टा करने लगी। कोई भी आवाज सुनाई नहीं पड़ी तो पुनः नल खोल दिया। स्नान के पश्चात ऊपर से नीचे तक साड़ी से शरीर ढककर बाहर निकल आई। देह से जल की धारायें बह रही थीं। बाल भीगकर पीठ से चिपक गये थे। अपने कमरे में घुसकर शीघ्र ही बाहर निकल आई। आंगन में कहीं कुछ आहट हुई थी।

आज घर में कोई नहीं था। शीला पहली बार अकेली रह गई थी। अनायास मिली उस स्वतन्त्रता का उपयोग करना चाहती थी वह''''पर उसे बारबार ऐसा लगता जैसे कोई आ जायगा—कोई देख लेगा'

जून महीने की, ढलती शाम प्रचंडता में बहने वाली लू की गरम आंधी की गति मंद हो गई थी। पश्चिम में सूर्यास्त हो रहा था। शीला खिड़की पर खड़ी हुई। वह सोचने लगी कि यदि इस दृश्य को तूलिबद्ध किया जाये तो वह एक सुन्दर लैंडस्केप बन सकता है। खिड़की के चौखट में फ्रेम हुए उस जीते जागते लैंडस्केप में खोई थी कि किसी ने द्वार खटखटाया। और वह कांपते पैरों से द्वार की ओर बढ़ी। किवाड़ की दराज में से देखा दूधवाला था। दूध लेकर अन्दर आयी तो दरवाजे की दोनों चटखनी अच्छी तरह बन्द कर दीं। उसके पैर अब भी कांप रहे थे।

स्कूल की छुट्टियां थीं। पिता माता हरिद्वार गये थे। भाभी बच्चों को लेकर मायके चली गईं थीं।

शीला सोचने लगी अच्छा हुआ सब लोग चले गये। अब उसके पास उपन्यास पढ़ने के लिये काफी समय था। एक बार 'झांसी की रानी' उपन्यास पढ़ते-पढ़ते वह फूट-फूट कर रोने लगी थी। सब बच्चे सो रहे थे किन्तु नन्हीं किरन जाग गई थी। शीला को इसका पता न था। किरन अपनी भोली आंखों में करुणा भर कर पूछने लगी—बुआ रो क्यों रही हो, क्या दादी ने ने तुम्हें डांटा है? बोलो न रो क्यों रही हो? और शीला ने अपने आंसू पोंछ कर किरन को गले से लगा लिया था।

वह धर्मवीर भारती का उपन्यास गुनाहों का देवता पढ़ने बैठ गयी। प्रारम्भ के दस पृष्ठ ही पढ़ पाई थी कि रसोई में कुछ आहट सुई। उपन्यास हाथ में ही पकड़े वह रसोई की ओर चली तो देखा एक चितकबरी बिल्ली अपनी मूंछों से सफेद-सफेद कुछ चाटती चली आ रही है। उपन्यास एक ओर पटक कर देखा तो दूध धरती पर फैला पड़ा था। शीला ने झटपट कोयले जलाकर बचा हुआ दूध अंगीठी पर चढ़ा दिया और निश्चिन्त होकर फिर उपन्यास पढ़ने बैठी ही थी कि कमरे के भीतर से उसे कोई आहट सुनाई पड़ी। वह कमरे की ओर चली किन्तु वहाँ अंधेरा देखकर उसका साहस नहीं हुआ और उसने कमरे का द्वार पुनः वैसे ही बन्द कर दिया। बचपन में भी अंधेरे कमरे में घुसने में उसे डर लगा करता था, आज वही बात याद करके सहसा उसे अपने ऊपर हँसी आ गई। बाहर भी अब अंधेरा फैलने लगा था। 'अब क्या करूं" यह सोच रही थी कि छत पर कोई आहट हुई। ऊपर मुंह उठा

कर देखा तो पड़ौस की छत पर नौकर पलंग बिछाने को तैयार कर रहा था। वह शीला के आंगन की ओर देख रहा था। शीला को आज अकेले में उस नौकर का इस तरह देखना इतना बुरा लगा कि अंधेरे और गर्म कमरे में वह इंजन की तरह धड़धड़ाती घुस गई और स्विच ऑन कर दिया। कमरा प्रकाश में जगमगा उठा। सीलिंग फैन चलाकर पलंग पर ही उपन्यास पढ़ने बैठ गयी।

द्वार पर किसी के बूटों की आवाज आई। वह सजग होगई। उसे उन पैरों का अन्दाज पहचाना-सा लगा और जाकर द्वार खोल दिया। कोई अपरिचित उसके भैया को पूछ रहा था। अनजाने में ही वह कुछ उदास हो गई और लौटकर फिर दर्पण के सामने आ खड़ी हुई। उसे लगा कि जैसे उसने अपने सौन्दर्य को कभी देखा ही नहीं है। आज एकान्त में वह भली प्रकार अपने को पहचानने की चेष्टा करने लगी। सहसा उसे प्रतीत हुआ कि वह यह तीस वर्ष की शीला नहीं वरन् आज से पन्द्रह वर्ष पहले की नवयौवना है। एक दिन उसके सौन्दर्य को किसी ने आंखें भर कर देखा था। वह सामने वाले घर में वातायन में बैठकर पढ़ता था। स्कूल आते-जाते वह भी उसे देख लिया करती थी। एक दिन स्कूल के रास्ते में उसने प्रणय निवेदन किया और शीला ने तैश में आकर पिता से उसी दिन शिकायत कर दी। वातायन की क्रियायें बन्द हो गई। आज इस क्षण उसके मन में उस किशोर की स्मृति उभर आई। एकाकीपन ने उसे भटका दिया। काश, यौवन की दहलीज पर पैर रखने वाले उस पहले मेहमान को उससे अपना बना लिया होता तो····
और उसने अपना नीचे का होठ दांतों से दबा लिया।

सप्तमी का चांद आकाश में हंस रहा था। उसके जूड़े में टंके बेले के फूल महक रहे थे। नीरस तथा कठोर कही जाने वाली अध्यापिका शीला आज एक प्रणयिनी के रूप में खड़ी मुस्कुरा रही थी।

भीतर से आती हुई आहट ने उसका ध्यान भंग किया और वह पटपट रसोई की ओर भागी। रसोई का द्वार खोलकर अन्दर जाने के लिये ज्योंही कदम रखा कि बाहर किसी के पैरों की आहट सुनाई दी। उल्टे पैरों द्वार खोलने दौड़ी, देखा तो भैया थे। 'अरे भैया हैं' उसके मुंह से निकल पड़ा। धीरे से बेले के फूल उसने जूड़े से नोंच डाले और होठों की लिपिस्टिक को रगड़कर पोंछ डाला। हारे थके भैया उस ओर लक्ष्य न कर भीतर आ गये।

रसोई में पुनः आहट हुई थी और बिल्ली भगोने को अंगीठी से नीचे गिराकर शेष दूध पिये जा रही थी।

कला

रामचन्द्र सागर

जन्म-तिथि—५, दिसम्बर, १९२५ ई० है। गत बारह वर्षों से आप
अध्यापन कार्य में रत हैं। विविध विषयों पर १४ पुस्तकें
प्रकाशित हो चुकी हैं। राष्ट्र भाषा साहित्य सम्मेलन
नागपुर के संस्थापकों में हैं। प्रारम्भ में आप
राजकीय दीक्षा विद्यालय, हरिद्वार में
नियुक्त हुए थे। आजकल आप
पी० जी० कालेज भारतीय
पशु अनुसंधानशाला,
इज्जत नगर,
बरेली में
हैं।

साहित्यक वाद–विवाद है कि "कला–कला के लिए है उसका जीवन के प्रति कोई महत्व नहीं" परन्तु मैं कहती हूं कि कला–कला के लिए न होकर केवल जीवन के लिए है।

मेरा नाम कला है। मैं उस कलामय ईश्वर की कला की कला हूं जिसे मानव आज तक न समझ सका। अतः ऐसी कला द्वारा अवतीर्ण की गयी कला की कला को भला कौन जान सकता है। बस इतना सा ही मेरा परिचय है।

कला सुन्दर वसुधा की सुन्दर निधि तो थी ही। वसन्त ने कुछ और उपहार फूल के रूप में भेंट कर उसे और सुन्दर बना दिया। इतने पर भी

वसन्त में रंग-बिरंगे पुष्पों की बहार स्वतंत्र भारत की वायु से शरण में अपनी सहेली सत्यवती, कैलाशी तथा इस पर मुग्ध होने वाली केशव प्रिया को भी लजा देने वाले रूप के रूप में कला ने ज्यों ही अपने को पाया कि वह स्वयं अपने पर ही मुग्ध हो गयी। नित्यप्रति वसन्त ने इसी प्रकार के सुन्दर-सुन्दर पुष्प प्रदान कर अपने हाथों से उसका पोषण किया और उसे बालिका से यौवना बना दिया। उसके यौवन को देख कर स्वयं उसकी जननी वसुधा भी लजा गया।

प्रातः होते ही पूर्व दिशा से सूर्य पुत्र राम ने सागर द्वार से वसुधा तट पर पग बढ़ाया। वसुधा तट पर प्रथम ही सूर्यवंशी राम को शरद काल में वसन्ती कला के दर्शन हुए। जगत पिता ने 'राम' को वसुधा के यहाँ कला को शिक्षित बनाने भेजा था। वसन्त पुत्री कला की 'राम' से यह प्रथम भेंट थी। कला शीघ्र ही सूर्य पुत्र राम से वार्तालाप करने में आनन्द लेने लगी। सूर्य पुत्र कला की शिक्षा समाप्त कर एक दिन संध्या समय घर लौट रहा था कि कहीं दूर वसुधा तट पर क्षितिज के समीप सागर और आकाश मिलते दीख पड़े। आकाश ने आगे पग बढ़ा सूर्य पुत्र को अपने आँचल में लेकर कहा—"मैं तुम्हारी ही खोज में था। मैं चाहता हूँ कि तुम दोनों का पाणिग्रहण संस्कार शीघ्र ही कर दूँ। भाँति-भाँति के वैभवशाली देवतागण अपने-अपने वैभव में मेरे यहाँ आये किन्तु मुझे तुम्हारी ही खोज थी। तुम तो जानते ही हो कि वसन्त और ग्रीष्म का पाणिग्रहण हुआ है। अच्छा सिंह समान शरीर वाले 'मान' के आने के पूर्व ही तुम मेरे से मिल लेना। सुनो हेमन्त भी वसन्त की ओर बड़े गर्व के साथ हाथ बढ़ाए चला आ रहा है।

आज घर में पूर्व की भाँति वसुधा और उसकी पुत्री कला ही थी। आकाश बादलों के कारण कहीं दीख न पड़ता था। कहने को तो आप आकाश हैं परन्तु गुणों में कदाचित किसी निर्धन मानव के "फकीर" के पुत्र के समान हैं। शरद के प्रभाव से वसुधा अधिक समय तक रुक न सकी। वृद्धा अवस्था जो आ पहुँची थी। समय देख हेमन्त ने शरद को दबा लिया और कहने लगा:—

पर क्यों ? यही तो मेरा प्रश्न है कि मेरे निःसंकोच व्यवहार का अनुचित व्यवहार का अनुचित लाभ उठा कर तुम्हें वसन्त पर अधिकार जमाने का

अधिकार दिया किसने ? उस पर मेरा अधिकार है। माना वसुधा उसकी जननी है और आकाश उसकी छाया फिर भी वह मेरी है। भ्रमित मानव ! पथ भ्रष्ट नवयुवक ! ! तुम लोग स्त्री के वार्तालाप में अपने विचारों की गंध कैसे ढूंढ़ लेते हो। स्वार्थी पुरुष ! नारी की मैत्री का यह मनमाना अर्थ निकालने का तुम्हें क्या अधिकार है········?

शरद मैंने तुम्हें और ही समझा था पर तुम········।

प्यारे हेमन्त ! क्या आप बिल्कुल भूल बैठे हैं आप कहां और कैसी परिस्थिति में है। आपको यह अधिकार मिला कहां से ? मैं पूछता हूं कि शंकाशील पुरुष किसी स्त्री को दूसरे से बातें करते देख इतने असहिष्णु क्यों हो उठते हैं ? जबकि उस नारी पर उनका स्वयं का भी तो कोई अधिकार नहीं······· ।

आवेश में आकर शरद न जाने और क्या-क्या कहने जा रहा था कि उसने हेमन्त को उठते देखा। शरद ने कहा—

हेमन्त मैंने भी तुम्हे कुछ और जाना था। कुछ और ही समझा था तुम्हें।

और हेमन्त भी यह कहता हुआ वहां से चला गया कि देख लूंगा तुम्हारा यह गर्व कितने दिन ठहरता है। यह कला मेरी निधि है········ ।

और कला यह सब सुन रही थी संसार के एक कोने में खड़ी। कला पहुंची संसार उद्यान के एक छोर पर जहां सागर शान्त नीरस सा पड़ा था। कला भी वहीं सागर तट के पास एक वृक्ष के नीचे क्षब्ध सी ही बैठ गयी। सोचने विचारने लगी कि कदाचित् सागर द्वारा ही उसका उद्धार हो जाए। बिना किसी भूमिका के ही कला पूछ बैठी—आर्य सागर—पुत्र ! आज का हेमन्त का व्यवहार आपको अनुचित तो लगा होगा किन्तु मैं कर भी क्या सकती थी ?

और असहिष्णु सा सागर पुत्र अनायास कह उठा—

वसन्त मैं यह सहन नहीं कर सकता कि किसी अन्य युवक का तुम पर अधिकार हो। मैं नहीं चाहता था कि तुम पर अपने मनोभाव प्रकट करूं········।

और तभी कला उसी क्षुब्धावस्था में चल दी। वह कहती जा रही थी—

जाती हूं जगत पिता के पास। पूछूंगी कि यदि उन्होंने स्त्री पुरुष, दो विभिन्न वर्गों का निर्माण किया है तो उनमें परस्पर श्रद्धा भाव क्यों न भरा। क्या एक में इतना अर्द्ध भाव भर दिया कि वह एक दूसरे के अस्तित्व को कुचलने का प्रयास करे। क्यों न उसे भी पुरुष के समान स्वतंत्र रखा। और क्यों कलाकारों ने इसका रूप कला तक ही सीमित रखा। मैं नहीं चाहती कि कला-कला के लिए प्रसिद्ध होकर रह जाए। क्यों न कला किसी के जीवन को प्रभावित करे क्योंकि कला जीवन के लिए है।

कलाकार स्तब्ध थे। वे सोचने लगे कि कला जा रही थी उस कलामय ईश्वर के पास उनसे सब कुछ कहने। यदि वे क्रोधित हुए तो। हमारा ही उस पर क्या अधिकार था। जगत पिता ने कला को संसार में मानव हेतु भेजा था। उस पर अकेले हेमन्त का क्या अधिकार ?

सूर्य पुत्र दौड़कर वर्ष भर में पकड़ पाया था कला के रहस्य को। कलाकारों ने विनय की, क्षमा मांगी, उपहार दिये और मनाया परन्तु सब व्यर्थ जैसे नहीं मानेगी आज कला। उसे इसी बन्धन में इक्कीस वर्ष जो हो गये। वह आज पूछ कर रहेगी, कलाकारों की इस मनमानी, इस हठधर्मी का रहस्य।

और चली जा रही थी कला उस जननी के पास। आज भी चल रही है। वसन्त ऋतु भी दौड़ रहा है हाँफता सा, वह भी अपनी पोषिता को क्यों छोड़ने लगा। और ज्यों ही कला उस परम पिता की ओर हाथ बढ़ाने लगी कि हेमन्त वायु-वेग उसे पीछे धकेलने लगा और फिर वह सागर तट से बहुत दूर होती गयी।

कलाकार प्रतिवर्ष कला को पकड़ पाता है। विनय करता है पर कला मानती ही नहीं। उसे शरद की खोज जो करनी है इसलिए साथ ही वह उस सागर को, तट को भी छोड़ना नहीं चाहती जहाँ वह आनन्द की सांस ले सके। सागर तट ही उसका जीवन है।

पर आज कला ने अपना कुछ और ही रूप धारण कर लिया है। आज न वह शरद को शान्ति दे पा रही है और न ग्रीष्म को प्यार।

चुनाव का टिकिट

•

भालचन्द्र जोशी

•

जन्म १६२० ई० में हुआ कई साहित्य संस्थाओं के संस्थापक तथा
संचालक हैं। वर्तमान में आप मासिक 'वीणा' के सम्पादक
तथा डेली कालेज इन्दौर के हिन्दी विभाग में अध्यक्ष
हैं। 'खट्टी मिट्ठी कहानियाँ', पेड़ पौधों की
कहानियाँ, आल्हा, वही बड़े की चाट,
चेंदूनियाँ, चिथड़ों की करामात,
शरारती बछड़ा, और
'एक पत्थर' आपकी
प्र का शि त
पुस्तकें
हैं।

•

सेठजी ने दृढ़ निश्चय कर लिया। अब वे परमिट माँगने वालों के स्थान पर परमिट देने वालों की श्रेणी में बैठकर ही दम लेंगे।

काले बाजार से सूत की लच्छियाँ आईं, खादी भंडार से शुद्ध खादी आई और सर्वोदय टेलरिंग मार्ट के कट्टर मास्टर से खास नेहरू कट के कपड़े बनवाये गये। उसी दिन चौके में पहुँचकर सेठानी जी को अहिंसा, असंग्रह और त्याग का उपदेश दिया गया। कांग्रेस टिकिट पर चुनाव लड़ने की बात तय हुई।

दूसरे दिन प्रान्तपतिजी के सामने सेठजी ने कांग्रेस के प्रति अपनी सहानुभूति के घड़े उंडेल दिये। कहा—"आप पैसे की तनिक भी चिन्ता न करें। इस बार कांग्रेस को जिताकर ही रहेंगे, मैं हर तरह से आपके साथ हूं।"

प्रान्तपतिजी ने धन्यवाद देते हुए कहा—"सो तो ठीक है सेठजी, परन्तु हमें पैसे की अपेक्षा सक्रिय कार्यकर्ताओं की अधिक आवश्यकता है।"

"हां, सो तो है, सो तो है........।"

पहले ही कदम पर ठोकर लगी, पर वे ऐसे-वैसे जीव न थे। कई बार इनकार सुनने के बाद भी वे अड़कर परमिट कटा लेने के आदी थे, रास्ते भर सोचते रहे, 'तो कांग्रेस को ठोस काम चाहिए! पैसे से क्या नहीं हो सकता? पचासों ठोस काम कदम चूमने लगते हैं और ये बड़े-बड़े लीडर क्या करते हैं? कोरा दिखावा, निरी उछल-कूद! लेक्चर झाड़ते हैं और मजे से चमचमाती कारों में घूमते हैं। तो क्या मैं उछल-कूद नहीं कर सकता!'

इसी समय उन्हें रामभरोसे मुनीम ने टोका। बोले—"सेठ साहब, जल नहीं बरसने से त्राहि-त्राहि मच रही है। अपने मुहल्ले के लोगों ने एक 'राम-सप्ताह' बिठाने की सोची है। आपकी क्या राय है?"

मानो हारते वकील को तर्क मिला। सेठजी तुरन्त बोल उठे—"ठीक-ठीक! बड़ी अच्छी बात है! जरूर होना चाहिए। धरम-करम पर ही तो सब कुछ टिका है। मैं हर तरह से तैयार हूं आज ही मीटिंग करो, मैं भाषण दूंगा।"

सेठजी प्रसन्न हुए कि चलो नेता बनने का अवसर मिला और मुनीमजी प्रसन्न हुए कि चलो अच्छा मुर्गा फंसा।

सेठजी की ओर से रात को चौक में खूब रोशनी लगाई गई, लाउड स्पीकर आये और सेठजी ने अपनी फ्रेंच कट हिन्दी में कहानी के चालाक सियार के समान मटक-मटक कर लेक्चर झाड़ा। जनता ने प्रसन्नता से आपकी भावनाओं का स्वागत किया और अखंड 'राम सप्ताह' तथा प्रभात फेरी का कार्यक्रम निश्चित् हुआ।

असमय ही वर्षा के रुक जाने और ओस पड़ना शुरू हो जाने से कहते हैं, जनता में चिन्ता की लहर फैल गई, परन्तु नगर के वातावरण से तो ऐसा

नहीं जान पड़ता था। ऐसा लगता था, मानो किसी बड़ी शुभ घटना के घटने से चारों ओर खुशियाँ मनाई जा रही हों। मन्दिरों में से हारमोनियम, गीत और झाँझ की सुमधुर ध्वनि निकल-निकल कर गूंज उठती थी। दिन में जय-जयनाद होता था और रात में दीवाली जैसी रोशनी।

सवेरे-सवेरे भगवा झंडा उठाए एक लम्बी भीड़ "जल्दी जल बरसा दो राम" के नारे लगाती हुई निकली। गोया ईश्वर भी कोई जन-प्रिय मंत्री हो जो उसकी कोठी पर अनावृष्टि के खिलाफ प्रोटेस्ट करने के लिए यह जुलूस चला जा रहा था। जुलूस में शत-प्रतिशत वे ही लोग थे, जिन्हें अपनी ब्लेक मार्केट की कमाई को बचा रखने की चिन्ता ही अधिक सता रही थी।

चौराहे पर जुलूस रुका। सेठजी एक पत्थर पर खड़े हुए। एक स्वयं सेवक ने हाथ में माइक दिया और वे घरों के भीतर और बाहर की जनता को सम्बोधित कर कहने लगे·········"सज्जनों, धर्म का ह्रास हो रहा है। रिश्वत-खोरी बढ़ रही है और भ्रष्टाचार का बोलबाला है। हमारे अगुआ तक इसके शिकार हो रहे हैं। फिर क्यों न हम पर ईश्वर का कोप हो ? क्यों न प्रभु हमें सजा दें ? इसलिए हे बन्धुओ, आओ, भगवान के चरणों में एकत्रित होकर भजन करो। शुद्ध मन की पुकार वह अवश्य सुनेगा। ओम-शान्ति, शान्ति, शान्ति !"

जनता ने तालियों की गड़गड़ाहट के साथ इस महत्वपूर्ण गलावजी का स्वागत किया। इसी समय माइक पर घोषित हुआ, सर्वजन हितेच्छु, धर्मप्राण, भक्तवर श्री सेठ साहब की ओर से आज शाम को जल्दी जल वृष्टि के निमित्त कथा होगी। कृपया सब सज्जन वृन्द अवश्य पधारें।"

जनता ने सेठजी के जय-जयनाद से सारे मुहल्ले को गुंजा दिया।

घर आकर सेठजी ने धीरे से मुनीमजी से कहा·········"क्यों, क्या अब भी कांग्रेस मुझे टिकिट न देगी ?"

"हाँ-हाँ, क्यों न देगी ? जरूर देगी।" मुनीमजी ने अपनी स्पेशल मुस्कराहट के साथ कहा।

"और न भी दे तो क्या ? सोशलिस्ट पार्टी है, कम्यूनिस्ट पार्टी है, कोई भी तो देगी ?" मैनेजर साहब बोले।

"बस, तुम तो शुरू में ही नाहीं कर देते हो। सोशलिस्ट और कम्यूनिस्ट तो हमें कच्चा ही निगल जाना चाहते हैं। भला उनसे हमारी कैसे पटेगी ? सेठजी चिढ़ गये।

रात को चौक में वही दिवाली का सा दृश्य उपस्थित हो गया। ऊंचा-सा जगमगाता मंच बनाया गया। सारा चौक मरक्यूरी के डंडों से भर दिया गया। ताजे सिनेमा की धुन में गाते हुए कथा-वाचक महाराज कह रहे थे··· "तो क्या कहते हैं····क्या नाम से कि गोपियां भगवान् कृष्ण के वियोग में कह रही हैं····क्या कहते हैं कि········"अंखियां मिला के, जिया भरमा के, चले नहीं जाना·· ····होऽ ओऽ ओऽ ओऽ·······" और हारमोनियम के अत्यन्त ऊंचे और बेसुरे स्वरों पर जोर-जोर से पड़ता हुआ उनका हथोड़ा छाप हाथ एकाएक रुक गया। एक भक्त ने बीच में ही प्रकट होकर पंडितजी के गले में हार डाला, कुछ भेंट की और पंडितजी प्रसन्नतापूर्वक घोषणा कर बैठे, "आहा-हा-हा, जो है सो क्या कहते हैं ! परम श्रद्धा भक्तिपूर्वक भक्तवर श्री करमदास जी ने भगवान् को साढ़े तीन आने भेंट चढ़ाए हैं, बोलो श्री भक्तराज की जय······ 'अंखिया मिलाऽके·······!'

जनता मंत्र-मुग्ध-सी सुन रही थी और सेठजी गर्व और प्रसन्नता से फूल कर कुप्पा हो रहे थे। अब तो जनता उनकी मुट्ठी में थी और वे सच्चे लीडर बन चुके थे।

कथा की समाप्ति पर पंडितजी ने घोषित किया, "सेठजी इस भ्रष्टाचार के जमाने में धर्म के एकमात्र रक्षक हैं। जब मंदिरों में मेहतर भरे जा रहे हैं, सबके साथ खाया-पिया जा रहा है, और सफेद टोपी पहन-पहनकर लोग धर्म को भ्रष्ट करने पर तुले हुए हैं, तब आपने धर्म का उद्धार करने की ठानी है। बोल, 'भक्तराज की जय !" और सेठजी ने एक अप्रत्यक्ष भय से कांप कर कानों पर हाथ रख लिए।

दूसरे दिन सवेरे अखबारों में कांग्रेस का टिकिट प्राप्त करने वालों की सूची छप गई। उसमें सेठजी का नाम न था। तलाश करने के बाद ज्ञात हुआ कि चुनाव बोर्ड में उन पर हिन्दू सभाई होने का दोष प्रमाणित हो चुका था।

सेठजी का रंग उड़ गया ! हाथ पैर कांप गये ! सारे सपने चूर-चूर हो गये ! !

"कोई बात नहीं महासभी अपनी है, हम महासभा के प्लेट फार्म से लड़ेंगे।" मुनीमजी ने धीरज बंधाई।

इसी समय महासभा के मंत्री भी खर्च का एक लम्बा-चौड़ा ब्यौरा लिए आ उपस्थित हुए। कुछ इधर-उधर की चर्चा के बाद सेठजी ने चुनाव के टिकिट की बात छेड़ी।

"महासभा के टिकिटों का तो निर्णय हो चुका। आपके वार्ड से लाला सीताराम खड़े हुए हैं। आपने पहले सूचित नहीं किया।" मंत्री जी ने हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा।

सेठजी के हाथ-पैर ठंडे पड़ गये। जब मंत्री जी चले गये तो वे रुआंसे होकर मैनेजर से बोले, "मैनेजर साहब, देखो, तलाश करो, सोशलिस्ट ही सही, कम्यूनिस्ट ही सही ! कहीं का तो टिकिट ला दो !"

"परन्तु यदि उनका राज हो गया तो वे तो अपना धन छीनकर गरीबों को बांट देने का नियम करा देंगे ?"

"तब की तब देखी जायगी, अभी तो अपना मतलब बना लो !" सेठजी ने अत्यन्त हताश भाव से कहा।

समय और बदलते रंग

चिरंजीलाल माथुर 'पंकज'

जन्म-तिथि—जौलाई १९२६ ई० है। राजस्थान केशरी, ज्वाला, कलम, प्रभा आदि अनेक पत्रों के भूतपूर्व सम्पादक हैं। 'जीवन के पथ पर', कांतिकृति भक्ति साहित्य, गृहलक्ष्मी की सूझ नवीन पाठमाला, आदि आपकी प्रकाशित पुस्तकें हैं। जीवन के पथ पर(कहानी-संग्रह) राजस्थान सरकार द्वारा पुरस्कृत है। वर्तमान में आप राजस्थान सरकार के सहायक कृषि सूचना अधिकारी हैं।

समय रथ अपने पहियों की लकीर छोड़ जाता है, ज्यों-ज्यों दिन बीतते हैं वह लकीर भरती जाती है। पर गुजरता वक्त जिस चीज़ का रंग उतार दे, समय के प्रवाह के साथ वह और भी बदरंग होती जाती है। अभी-अभी जो आदमी मेरे पास से अनदेखा सा गुजर गया है, उसकी शक्ल मेरी अच्छी तरह पहचानी हुई है। केवल मैं ही क्यों, गांव का हर आदमी उसे जानता है। एक समय था जब ठाकुर गुमानसिंह के चेहरे का रंग सेब की तरह सुर्ख और आंखों की चमक मशालों की रोशनी को फीकी कर देने वाली थी पर समय को क्या कहा जाय? जब पलटता है तो सब रंग बदरंग हो जाते हैं।

ठाकुर के पावों के निशान जो इस बालुई मिट्टी पर बन गये हैं, कुछ देर बाद वे मिट जायें। उमरे हुए कणों की हवा उड़ा ले जायगी।

हां अभी-अभी में ठाकुर के रंग के बारे में सोच रहा था। कैसे चकोतरे पड़ गये हैं उसके चेहरे पर, चेहरे की सुर्खी कड़ी धूप में मटियाली पड़ गयी है····और वह सामने खड़ी हवेली के कंगूरे पर काई और मिट्टी की एक गहरी काली पर्त जम गयी है। मुझे इस हवेली का वह जमाना भी याद है जब वह चांदी सी जगमाती रहती थी। हर महीने बेगार में पकड़े मजदूर हवेली की रूप सज्जा संवारते रहते थे कि उनकी आंखें उस ओर देखते कतराती और अब उसी हवेली के बेरोनक और बदरंग कंगूरे से लग रहे थे जैसे कोई अपना सब कुछ लुटा कर शिर झुकाये खड़ा हो।

लेकिन एक समय था·········

"सड़ाक···· " सड़ाक······सड़ाक······सड़ाक·······

ठाकुर गुमान सिह गुस्से में हाथ में हन्टर लिये लिखमा को बुरी तरह पीट रहे थे। सड़ाक·······सड़ाक·······हन्टर बरस रहे थे। सारी बारात मानों पत्थर की हो गयी थी। गांव के लोग भी काफी इकट्ठे हो गये थे। लेकिन सब चित्र लिखित से खड़े थे। सभी के चेहरों का रंग बदल गया था वे मूर्तिवत खड़े थे। किसी की क्या हिम्मत जो ठाकुर के हाथ से हन्टर ले सके।

हरामी·······तेरी यह हिम्मत कैसे हुई कि तू अपने बेटे को घोड़े पर बिठाकर बरात को राले के समाने से निकाले ? गुस्से से लाल ठाकुर ने कहा।

"हजूर·······माई बाप·······बींद को राजा कहते हैं। केवल एक दिन के लिए कहलाने वाला राजा·······घोड़े पर बैठकर रावले के सामने से निकल जाय·······आपका चाकर लिखमा का बेटा·······।।"

सड़ाक·······सड़ाक·······सड़ाक·······सड़ाक······

'कमीने·······राजा ! लिखमा का बेटा और राजा ! ! तुम्हारे बाप दादाओं ने कभी राजा के दर्शन भी किये थे·······। नीच·······टुकड़ेल······।

सड़ाक·······सड़ाक······सड़ाक·······

लिखमा, ठाकुर गुमान सिंह का सबसे बड़ा कारिंदा था। ठाकुर ने लिखमा के द्वारा अपनी कई इच्छाएं पूर्ण की थीं। ठाकुर की वासना की भूख मिटाने के लिए यही लिखमा गांव की बहू बेटियों को इस रावले में लाया, इसके द्वारा ही पकड़ कर लाये गये बेगारियों से हवेली की चांदी सी चमक बनी रही। लिखना क्या नहीं कर सकता था। सारा गांव लिखमा को ही ठाकुर मानता था। फिर लिखमा अपने बेटे की बारात गांव में घोड़े पर बिठाकर नहीं निकाले।

गांव के लोगों का भय बना था। आज लिखमा की खैर नहीं है। गांव का बड़ा महाजन भी रावले के सामने जूता पहिन कर नहीं निकल सकता, जूते हाथ में लेकर जाना पड़ता था। फिर भला लिखमा······। है तो आखिर नीच कौम ही···ठाकुर ने सिर चढ़ा रक्खा है तो क्या····अपने लड़के को घोड़े पर बिठाकर रावले के सामने से निकाले।

सड़ाक····सड़ाक····सड़ाक···सड़ाक।

वर, वधू को लेकर घर लौटने का स्वप्न देखता। 'लिखमा हन्टरों की मार से लहूलुहान हो चुका था। तड़प कर लिखमा ने वहीं प्राण दे दिये। विवाह तो होना था, हुआ ही, लेकिन लिखमा···बेचारा।

अभी-अभी ठाकुर गुमान सिंह मेरे सामने से गुजरा है। बालुई मिट्टी में ठाकुर के पांवों के उभरे निशान थोड़ी दूर में मर जाएंगे। जो बालू के कण पिछली बालू से ऊपर तन गये हैं। उन्हें हवा उड़ा देगी और फिर समय की गति एक दिन इन बदरंग कंगूरों को ढहा देगी। ऊपर चढ़ी मिट्टी, मिट्टी में मिल जायगी। और फिर मिट्टी से पैदा हुये लोग महल बनायेंगे, कफन के महल। पर उनमें ठाकुर न रहेगा, मिट्टी से पैदा हुये, मिट्टी में खेले लोग रहेंगे। सब एक साथ।

बन्दी

०

श्याम किशोर 'निगम'

०

कविता, कहानी, लेख, नाटक सभी कुछ लिखते
हैं। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन हुआ है :
एक कहानी-संग्रह छप चुका है।
वर्तमान में सरस्वती शिशु
मन्दिर कानपुर में
अध्यापन कार्य
कर रहे
हैं।

बन्दी, बन्दी""""ओ बन्दी !

तेरी माँ तुझसे मिलने आई है।

हाथ की हथकड़ी और पाँव की बेड़ी झनझना उठी ! कौन बन्दी ? किसे बन्दी कहता है ? मूर्ख !

बन्दी, की आँखें लाल रक्त सी हो गईं। बन्दी वह है; जिसने कोई अपराध किया हो ! फिर मैं बन्दी कहाँ हूँ ? मैंने कोई अपराध नहीं किया; अपनी प्यारी भारत माता को बंधन से मुक्त कराने का बीड़ा उठाया है। यह तो कर्त्तव्य है। अपराध नहीं।

"ईडियट" जेलर ने डाँटा।

तुम्हें ज्ञात होना चाहिए कि कल तुम्हें मृत्यु दंड दिया जायेगा और आज तुम घमंड में डूबे हो" बन्दी ने उत्तर दिया, "हिन्दू कभी भी नहीं मरता। वह अमर है। सम्भवतः तुम इसे भूलते हो, 'कुछ सोचकर' कल मेरी आत्मा यह कलेवर त्याग कर नवीन कलेवर गृहण करेगी। वह दिन कितना सुन्दर होगा ! तुमने कभी इसकी कल्पना की है ?

जेलर ने कहा, 'समय अधिक हो गया है, तुम्हारी माँ प्रतीक्षा कर रही है।'

'अच्छा ! माँ को यहीं भेज दो मेरे पास' बन्दी ने कहा।

टन, टन, टन, टन जेल की दीवार घड़ी ने चार बजने की सूचना दी।

बन्दी गद्गद् कण्ठ से बोल उठा, 'माँ' दोनों के नेत्रों में प्रेमोनद उमड़ पड़ा।

माँ ने कहा, "आज का दिन धन्य है। बेटा मेरे युग-युग के अरमान सफल हुए। भगवान तू बड़ा कृपालु है।"

बन्दी ने व्यंग किया, "क्योंकि तुम आज बन्दी पुत्र से मिलने आई हो न माँ, जिसे कल मृत्यु दण्ड दिया जायेगा।"

माँ चीख पड़ी—"मेरा पुत्र। कदापि बन्दी नहीं है। क्योंकि उसने कोई अपराध नहीं किया। वह भारत का वीर सिपाही है ! माँ का सम्मान करना जानता है। भगवान ! तुम फिर मेरी ही कोख में इसका जन्म देना, और फिर इसे मैं वीर पुत्र बनाऊँगी। जिससे यह फिर भारत माँ की मर्यादा की रक्षा कर सके।"

बन्दी ने कहा, "माँ ! यह तुम्हारा प्रताप है, कल तुम्हारा पुत्र भारत माता की बलिवेदी पर बलिदान होगा। माँ तुम्हारे पुत्र ने तुम-सी सिंहनी माँ का दूध पिया है। वह दूध की रक्षा करना भी जानता है।"

माँ ने बन्दी को गर्व की दृष्टि से देखा—"आज भारत माँ को केवल तुम जैसे पुत्रों की प्रतीक्षा है।"

"माँ यही होगा। मेरा विश्वास है। तुम निराश न होना।"

माँ ने आर्शीवाद दिया, "बेटा तुम अमर हो……' हिन्दू अमर है।"

"माँ तुम्हारा आर्शीवाद मझे साहस दे और मेरी आत्मा तुम्हें संतोष।"

जेलर ने कहा—"समय हो चुका है। चलिए।"

बन्दी ने माँ के पैर छुए और कहा—"माँ तुम्हारे बेटे ने तुम्हारा दूध पिया है, जाओ दूध की लाज बेटे के हाथ है।" माँ ने कहा—"बेटा।"

बन्दी ने उत्तर दिया—"माँ।"

जेलर के साथ माँ कारागृह से बाहर आ गई। और बन्दी दूर शून्य में किसी को जेल के सीकचों से अपलक देखता रहा।

जेल की घड़ी में टन, टन, टन, टन, टन पाँच बज चुके थे।

इधर भोर होते ही भगवान भास्कर के साथ ही साथ पूरब से जलूस निकाला जो कि प्यारी भारत माता के जय-जयकारों से आकाश को चुनौती सा दे रहा था। उसके आगे चार भारत माँ के प्यारे पुत्रों के कन्धे पर अर्थी थी— रामप्रसाद बिसमिल की। जेलर दौड़ता हुआ आया और अर्थी पर गिर पड़ा कहने लगा, 'मैं भी आप के साथ हूँ, तन से अंग्रेज भले ही हूँ, किन्तु मन से विशुद्ध भारतीय मुझे भी अपने में मिला लो।'

बन्दी उड़ चुका था। भारत माँ की मर्यादा का रक्षक वीर पुत्र राम प्रसाद बिसमिल सोया पड़ा था।

ज्ञात होता था कि जैसे बन्दी चुनौती सा दे रहा है। कौन बन्दी ? बन्दी वह है, जिसने अपराध किया हो।

अतीत के तीन पृष्ठ

०

कमला जैन 'जीजी'

०

आपकी कविताएँ एवं कहानियाँ समय-समय पर पत्र-
पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। साहित्य की
सभी विधाओं में लिखती हैं। अनेक लोक-
प्रिय संकलनों में रचनाएँ संकलित
हैं। आजकल आप महावीर
कन्याविद्यालय राणा
वास में प्रधाना-
ध्यापिका
हैं।

●

"नमस्कार........।"

"नमस्कार !"

"कहाँ से पधारे हैं आप ?"

"किशनगढ़ से, आपको तकलीफ देने आया हूँ।"

"तकलीफ की क्या बात है ? किसी बच्ची को भर्ती कराने आए हैं शायद ?"

"जी हाँ ! मेरी बच्ची है, 'अर्चना; उसे ही आपकी विद्यापीठ में प्रवेश कराने आया हूँ। अभी तो किशनगढ़ में मेरे पास ही पढ़ रही थी पर अब मेरा ट्रान्सफर फालना हो गया है। अतः सोचा आपके यहाँ रख दूँ। पास भी रहेगा।"

"जी हाँ, ठीक है कौन-सी क्लास में भर्ती कीजियेगा? यह लीजिये फार्म ! भर दीजिये व तीन महीने की भोजनादि की फीस १००) रु० जमा कर दीजिये। कहाँ है आपकी बच्ची ? नाम तो बड़ा सुन्दर है उसका 'अर्चना'।"

"जी हाँ ! नाम बहुत सुन्दर है उसी प्रकार सौन्दर्य की प्रतिमा भी है, बहुत ही शांत, कुशाग्र बुद्धि पर·········।" आगे कहकर भद्र व्यक्ति ने गहरी साँस ली।

"पर क्या·········? बड़ी उत्सुकता पूर्वक प्रधान-अध्यापिका सरोज शर्मा ने पूछा।"

"एक पैर उसका जन्म से खराब है। पर ओह·········अरे ??? माफ कीजियेगा। यह क्या ?" अपनी लड़की के पैर के विषय में बताते हुए हैड-मिस्ट्रेस के पैर पर दृष्टि पड़ते ही आगुन्तक जगन्नाथ जी ने पूछा।

"जी हाँ।" फीकी हँसी चेहरे पर लाते हुए सरोज जी ने कहा—"मेरा भी यह पैर शुरू से ही खराब है।"

कुछ क्षण मौन रहा। दोनों ही कुछ न कह न सके आखिर सरोज शर्मा ने ही मौन तोड़ते हुए कहा—

"तो फिर आप फार्म भर दीजिये·········।"

"जी हाँ अभी लीजिये।" और उन्होंने चटपट फार्म भरकर फीस के रुपये मेज पर रख दिये। और चले गए।

"अरे ! सुशीला जी पँवार·········।"

"अरे शास्त्रीजी। पुष्पा जी !! अरे–अरे–सुनिये तो·········।"

"ओ-हो·········!!! क्या हो गया है ? क्यों शोर मचा रही है ?? पढ़ने भी नहीं देती।" सुशीला पँवार ने चिल्लाती हुई, और हाँफते-हाँफते दौड़कर आती हुई रक्षा को डाँटा।

पर फटकार की तनिक भी परवाह न करते हुए रक्षा कहती गई—"अरे! दो नई लड़कियाँ आई हैं अभी-अभी। बुआ-भतीजी हैं। यहाँ भर्ती होंगी। एक तो आपकी दसवीं कक्षा में और दूसरी छठी में। बड़ी का नाम है सरोज और छोटी का नाम ऊषा·········।"

"नई लड़कियाँ आईं तो क्या हुआ रोज ही तो आती हैं। आज कोई नई बात हो गई ? जो आसमान सिर पर उठा रखा है।"

"हाँ! हाँ !!" सुशीला के गले में बाँहें डालती हुई रक्षा बोली—"बड़ी मजेदार बात है सुशीला जी !!" रक्षा ने नई आई हुई लड़की की नकल उतारते हुए बताया।

"अरे ! हैं ? सचमुच ?? आओ पुष्पाजी ! चलो देखें क्या माजरा है ?

दोनों फाटक पर पहुँची तो देखा कि विद्यापीठ के करीब-करीब सारी लड़कियाँ उनसे पहले ही वहाँ पहुँच चुकी हैं। और बड़े कौतूहल पूर्वक उन लड़कियों को देख रही हैं। छोटी-छोटी लड़कियाँ तो बड़ी लड़की के पैरों की तरफ इशारे कर रही हैं जिन्हें कह कर आई हुई लड़की भी देख रही हैं। दोनों ही छात्रावास की तरफ आ रही रहीं थी। छोटी की तो आँखें रो रोकर सूझ आई थी। बड़ी रो तो नहीं रही थी पर गहरी उदासी व अपनी अंग विकृति के कारण बहुत ही संकुचित हो रही थी। शारीरिक दृष्टि से अपने को हीन समझने की भावना उसे बुरी तरह उदास बनाए थी। इतनी सबकी कौतूहल पूर्ण आँखों का सामना वह नहीं कर पा रही थी। एक लड़की को कुहनी से धक्का देते हुए कहा—

"हाय, राम ! कल पहले पाठ में से टैस्ट होगा। याद तो कुछ भी नहीं है खैर—ईश्वर ही मालिक है।" और उसने गा दिया—

जाकी कृपा पंगु गिरि लंघे,
अंधे को सब कुछ दरसाई।

कुशाग्र बुद्धि सरोज की आँखों में अब आँसू आ गए यह स्वागत गान सुनकर। और उसके पैर मन-मन भर के हो गए। जिन्हें बड़ी मुश्किल से घसीटती हुई वह छात्रावास तक लाई।

"बहन जी एक बात बताऊँ।"

"क्यों क्या बात है.......?" गृहमाता ने उस छात्रा के कहने के ढंग से विस्मृत होकर पूछा।

"बताऊँ ? और उसने धीरे-धीरे गृहमाता के कान में फुसफुसाकर कहा—

"आज अभी सरोज जी ने न जाने किसको पत्र लिखा है। और लिखकर एक लिफाफे में डाला है। मैं किताब माँगने गई जल्दी से जेब में छिपा लिया।"

"अच्छा। जा मैं देख लूँगी.........।"

शाम की प्रार्थना के बाद सब लड़कियों ने जल्दी-जल्दी अपने-अपने पत्र

लाकर गृहमाता को दिये। पर सरोज को न लाते देखकर उन्होंने उसे बुलवाया और कहा—

"सरोज ! तुमने अपना पत्र नहीं दिया ?"

"मैंने तो लिखा भी नहीं ?" सरोज भय के कारण झूठ बोल गई।

उसे इस प्रकार बार-बार झूठ बोलते देखकर गृहमाता उबल पड़ीं—

"सरोज ! मैं कई दिनों से तुम्हारे लक्षण अच्छे नहीं देख रही हूं। तुम छिप-छिप कर पत्र लिखती हो। खिड़की में बैठे सड़क की तरफ देखती रहती हो। किसकी प्रतिक्षा करती हो तुम ? क्यों ?"

सरोज फूट-फूट कर रो उठी। कुछ कह न सकी। कहने का मौका भी नहीं मिला।

गृहमाता जी ने उसके रोने की ओर ध्यान नहीं दिया और जबर्दस्ती उसकी जेब में पत्र निकालते हुए बोलीं—"यह क्या है फिर ? और किसी को नहीं लिखा। मैं कल ही तुम्हारे घर पर पत्र डलवा दूंगी कि तुम्हें आकर ले जांय। ऐसी लड़कियां हमारे छात्रावास में रहने लायक नहीं।"

पर लिफाफे में से पत्र निकाल कर पढ़ना शुरू करते ही वे काठ होती गईं। चेहरे का रंग बदलता गया। पत्र था—

पूज्य पिताजी,

कब आयेंगे आप ? बड़ी मुश्किल से छिपाकर मैंने एक पत्र डलवाया था। क्या नहीं मिला आपको ? मैं रोज आपकी प्रतीक्षा करती हूं। गाड़ी निकलते ही दूर सड़क से आते हुए आपको देखने के लिये व्यग्र रहती हूं।

मुझसे अब रहा नहीं जाता पिताजी ! ! ईश्वर ने मुझे अपंग बनाकर दुनिया की नजरों में तो उपहास का पात्र बना ही दिया है हर क्षण में अपने को हीन समझती हूं। मुझे ले जाइये पिताजी ! मैं अब यहां नहीं रह सकती। नहीं रहा जाता मुझसे। कैसे कहूं मैं यह सब ? कैसे पहुंचाऊं आप तक यह पत्र ? यहां वाले जाने भी तो नहीं देंगे। क्या करूं ? पिताजी ! ! काश मैं जन्मते ही मर जाती।

आपकी अभागिन
सरोज

गृहमाता पढ़कर स्तब्ध, निर्वाक हो गईं। कुछ कह न सकीं। बड़ी कठिनाई से कुछ शब्द उनकी जबान से निकले।

"मैं अपने व्यवहार के लिये शर्मिन्दा हूं सरोज! जाओ अब तुम सो जाओ जाकर।"

"बहन जी नमस्ते·······।"

एक पतली, धीमी व व्यथा भरी सी आवाज ने सरोज देवी को उनकी भाव निद्रा से जगा दिया·······।

"कौन अर्चना? आओ! तुम्हारे पिताजी कहां हैं?"

"वे आ रहे हैं। और साथ ही आगन्तुक ने अंदर प्रवेश करते हुए कहा—"तो अब मैं······"

प्रधानाध्यापिका सरोज शर्मा ने बात काटते हुए कहा—"जगन्नाथ जी से! फार्म भरवाकर मैंने आपको तकलीफ दी पर क्षमा करें। अभी-अभी मैंने गृहमाता जी से पुछवाकर तलाश किया है तो मालूम हुआ कि यहां अब नई छात्रा को लेने की तनिक भी गुंजाइश नहीं है। स्थान की कमी है और निश्चित संख्या से भी ज्यादा छात्रायें यहां प्रवेश पा चुकी हैं अतः आप·······।"

"पर आपने अभी तो·······"

"हां मुझे ध्यान नहीं रहा था। उसी के लिये तो मैंने आपसे क्षमा मांगी है। मेरी सलाह है कि आप अर्चना को अपने पास रखकर पढ़ाइये। होशियार है अतः सहज ही वह प्राइवेट परीक्षायें दे सकेगी। जगन्नाथ बाबू!!! इसे आप कहीं और भी न भेजियेगा। हरगिज नहीं। अपने पास ही रखियेगा। अच्छा नमस्कार······।"

समाजवाद की राह

०

सत्यनारायण गुप्ता

०

विशेषकर कहानियां लिखते है। हास्य व्यंग्य कहानियां लिखने में विशेष रुचि है। पत्र पत्रिकाओं में अनेक कहानियों का प्रकाशन हुआ है। एक दो पुस्तकों का प्रकाशन शीघ्र हो रहा है। आज कल आप नागपुर में निवास कर रहे हैं।

आजकल रेलवे टिकट-घर पर भीड़ क्या होने लगी; लोगों ने आसमान सिर पर उठा लिया है। कहेंगे कि साहब ! चुनाव का टिकट मिलना आसान है, पर रेलवे का टिकट नहीं मिलता। जिसने चुनाव का टिकट पाने के लिए जूतों की एड़ी घिसी है, टिकट देने वालों के यहां पानी भरा है। गधों को काका कहा है, उनसे पूछिए ! कोई घायल ही जानता होगा घायल की गति।

हमारे शहर में नगर पालिका का चुनाव था। जैसे कि "हिन्दी चीनी भाई-भाई" चिल्लाने वाले भारतीयों ने चीनी आक्रमण की कभी उपेक्षा नहीं की थी वैसे ही मेरे वार्ड नं० ११ के लोगों ने भी मेरे चुनाव में खड़े होने की बात सोची तक न होगी। सभी पार्टी के उम्मीदवारों के नाम घोषित हो चुके थे।

घर में किसी की मृत्यु हो जाय तो बाद में सांत्वना देने वालों का तांता बंध जाता है वैसे ही चुनाव में खड़े होते ही बैठाने वालों की लाइन लग गई।

हम धीर-गम्भीर बने रहे। कभी सौजन्यता से काम लेते तो कभी किसी को झिड़क भी देते। एक राज खोल ही दे। एक प्रतिस्पर्धी ने तो हमारे हाथ में पाँच सौ रुपये लाकर थमा भी दिए और हमने वादा भी किया कि हम बैठ भी जायेंगे। रुपये लेकर एक गल्ती हम कर ही चुके थे, लेकिन हमने वादा पूरा करने की दूसरी गल्ती नहीं की। चुनाव के दौरान में वादा पूरा करने वाला बेवकूफ होता है। जिन सज्जन ने हमारे वादे पर विश्वास किया, वे बाप कमाई वाले थे और चुनाव क्षेत्र में नौसिखिये। वे गल्ती खागए, किसीको बोलते भी तो लोग उनकी ही नादानी पर हँसते! उन्हें जहर का घूँट पीने के सिवाय और कोई चारा नहीं था।

चुनाव का दिन सिर पर आने लगा। लाउडस्पीकर का भोंकना बढ़ गया। परदे के पीछे क्या और परदे के बाहर क्या। गतिविधियाँ जोर पकड़ रही थी, केवल तभी थोड़े उदासीन थे। बेमन से मन्द-मन्द चुनाव प्रचार कर रहे थे। लोगों ने समझा हम गच खा गए।

लम्बी दौड़ में, अच्छा दौड़ने वाला आखिर में दम लगा कर दौड़ता है, उसी प्रकार चुनाव को दो दिन रह गए तो हम भी दहाड़ उठे। अब तक पता चल ही गया था कि किस उम्मीदवार ने कहाँ-कहाँ और क्या-क्या किया है और किसकी क्या कमी रह गई है हमने इन कमजोरियों का फायदा उठाया। क्या करें और अब हमने तुरप का पत्ता फेंका कि हम चुनकर आयेंगे तो अपने वार्ड में डामर की सड़क बनवा देंगे। हमारे प्रतिस्पर्धी सकते में आ गए। पर अब खंडन मण्डन को समय ही रहा कहाँ था। भला हो चुनाव के नियमों का कि चौबीस घंटों पूर्व ही प्रचार करना बन्द हो जाना चाहिये।

चुनाव की पहली अर्द्ध रात्रि तक मैंने मतदाताओं से व्यक्तिगत सम्पर्क को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया। मैंने और क्या-क्या किया, उसको लिखने का न तो मुझ में नैतिक साहस ही है और न लिखकर कानूनी झंझटों को ही आमन्त्रण देना चाहता हूँ। कौन 'आ बैल मुझे मार' वाली बात कहे।

चुनाव परिणाम घोषित हुआ तो चुनावी दाव पेच के अच्छे-अच्छे पारंगत भी दाँतों तले अंगुली दबा बैठे। उनकी आशाओं पर पानी फिर गया, जैसा कि राजकोट और अमरोहा के चुनाव में हुआ था। केवल मुझे ही मेरे चुनाव

में चुने जाने में शक न था। अमोघ शस्त्र जो बापर चुका था। मेरे शानदार जुलूस की तैयारियों में पक्ष-विपक्ष के सभी लोग आ जुटे। जैसे किसी के मरने पर मित्र व शत्रु सभी आ जाते हैं। हाँ जैसा कि आजकल चल पड़ा है, मेरे स्वागत में भी कई स्थानों पर महिलाओं ने मुझे कुंकुम लगाया और मेरी आरती उतारी। मैं अपने गले से पुष्पमालाएँ निकाल बच्चों को देने लगा। मैं सचमुच ही विह्वल हो रहा था।

स्वाभाविकतः इसके बाद चुनाव याचिकाएं दायर की गईं। जले-भुनों ने दावा किया कि अकाट्य प्रमाण है चुनाव अवैध घोषित कराने के। मुझे लगा कि मैं हाथी हूं जो जा रहा है और कुत्ते भौंक रहे हैं। आपको बतादूं आज तक चुनाव याचिकाओं के बीच में मैं उसी प्रकार बतौर मॅम्बर हूं, जिस प्रकार कि कांटों में फूल होता है।

नगरपालिका की पहली सभा में मैंने प्रस्ताव रखा कि वार्डों का विभाजन फिर से हो क्योंकि यह कार्य वैज्ञानिक ढंग से नहीं हुआ था। कुछ साल पहले कुछ स्वार्थी तत्वों ने अपना-अपना उल्लू सीधा करने के लिये, कैसे भी शहर को कुछ हिस्सों में बांट दिया, जैसा कि अंग्रेजों ने भारत को प्रान्तों में बांट दिया था। अब चूंकि भारत को नए सिरे से प्रान्तों में बांट दिया गया है तो अपना शहर इससे क्यों वंचित रहे। बहुमत मेम्बर अपने-अपने वार्ड में अपनी-अपनी स्वार्थ पूर्ति के हेतु कांट-छांट करना चाहिये। सो प्रस्ताव हाथों-हाथ पास (पारित) हो गया।

अब मैंने दूर की कौड़ी फेंकी। शहर की एकमेव बीड़ी फर्म वार्ड नम्बर १२ की, मैंने ले देकर अपने वार्ड में कराली। वार्ड १२ से इसी फर्म का कोई न कोई कर्मचारी ही मेम्बर चुनकर आता था। बुरा हो इस सरकारी नौकरी का कि कर्मचारियों का चुनाव-खर्च भी फर्म ही सहन करती थी। जानते हो क्यों ? बेर देकर आंवला खींचने वाली बात आप जानते हैं। यही कार्य इस फर्म का भी था। बीड़ी बन्डलों के काम आने वाली झिल्ली और लेबल पर यदि ईमानदारी से यह फर्म चुंगी कताती तो कोई एक लाख रुपया वार्षिक चुकाना पड़ता पर मुश्किल से दस हजार रुपये पटाया जाता था। सैंया कोतवाल हो तो डर नहीं लगता, फिर तो अपना ही कर्मचारी वार्ड का मेम्बर था, घर की मुर्गी दाल बराबर।

मैं शहर के नाके का गश्त देने लगा। बिना चुंगी पटाए अब शहर में झिल्ली और लेवल उसी प्रकार नहीं आ पाते, जिस प्रकार कि तीर्थ-स्थान पर बिना पंडों को कुछ दिए, कोई यात्री नहीं आ सकता है। फर्म का मालिक मुझ पर आग बबूला हो रहा था। मुझे चांदी का जूता मारने की कोशिश की गई, डराया धमकाया गया, पर मैं था जो, हिमालय के समान अडिग रहा।

नगरपालिका की अगली बैठक में एक बम और फोड़ा। मैंने कहा मेरे वार्ड की जितनी आय है वह मेरे ही वार्ड पर खर्च होनी चाहिए। मैंने गम्भीर होकर घोषणा कर दी कि मेरे वार्ड में डामर की सड़क बनने का कार्य अविलम्ब चालू किया जाय। सदस्यों को सांप सूंघ गया। बीड़ी-फर्म मालिक ने तो अपना सिर ही पीट लिया।

सड़कें बनी जिस प्रकार भारत में बड़े-बड़े बांध बन रहे हैं, भारत में जहां कहीं जो भी निर्माण हो रहा है, उसका जो भी इतिहास रहा है वही हमारे यहां की सड़क निर्माण का रहा।

सड़कों का उद्‌घाटन करने आए प्रान्त के उद्योग-मन्त्री! उद्‌घाटन समारोह में अच्छी खासी भीड़ जमा हो गई। तालियां पीटने बच्चे भी आ जमा हो गए, गोया कोई मदारी जादू का खेल दिखाने आया हो। तबले के ठोंके पर नर्तकी के पैर थिरकने लगते हैं, वैसे ही खासी पब्लिक देखकर मन्त्री जी लम्बे भाषण देने के मूड में आ गए। फिर क्या था, वे हाथ उठा कर कहने लगे :—'इन्हें केवल सड़कें न समझो! ये समाजवाद की राह है!! धीरे से अंग्रेजी में भी बुदबुदाए कि "वे टू सोशलिज्म" यह श्रमदान का कठोर और लम्बा रूप है। मैं चाहूंगा कि इस पर विनोबा जी आकर चलें! अंत में हार्दिक इच्छा व्यक्त की कि जैसे छूत की बीमारी चारो ओर फैल जाती है वैसे ही ये सड़कें सब ओर फैल जाएं। तालियों की गड़गड़ाहट में उनके भाषण का अन्तिम भाग दब गया।

राष्ट्रगान के साथ ही समारोह समाप्त हुआ।

छिपकली

०

जितेन्द्र प्रसादसिंह

०

जन्म तिथि—२१ मार्च १९३७ ई० है । बचपन कटुता एवं संघर्षों में व्यतीत हुआ । तीन कालेजों के बाद रामकृष्ण कालेज मधुमती (दरभंगा) में अंग्रेजी के प्रोफेसर हैं । साहित्य की सभी विधाओं में लिखा है । इस समय आप टी० एस० एलियट के काव्यानुवाद में व्यस्त हैं ।

कोई काम नहीं रहने की वजह से रमेश चारपाई पर लेटा रहता है, पी० एच० डी० का काम प्रायः अब पूरा ही होने वाला है. २००) रु० हर महीने मिलते हैं । एक आदमी के लिये यह राशि बहुत उचित है, खासकर आज के जमाने में ।

आज अधिक काम नहीं था । कुछ कागज संभालने थे, उन्हें संभालकर वह कुछ पढ़ने बैठता है । एक पंक्ति के बाद दिमाग कहीं दूसरी जगह चला जाता है । कमरे की रोशनी बुझाकर वह छत पर चला जाता है । मकान के तिमंजले की छत बहुत ऊपर है । सामने नगर के कोलाहल में एक संगीतमयी धारा प्रवाहित होती है । अन्धेरे में बैठा रमेश कुछ सोचने लगता है ।

आज उसके घर से पत्र आया था। चाचा बहुत अधिक बीमार थे, अब ठीक हो गये हैं। गाँव का वह वातावरण याद आया। लेकिन उसका दिमाग वहाँ भी नहीं टिका। वह चाहता है श्यामा के पास रहना। श्यामा दूसरे कौम की लड़की है। वह कॉलेज में पढ़ती है। और उसे लगा कि श्यामा नित्य की भाँति उसके पीछे आकर खड़ी हो गयी है।

श्यामा के कानों की बालियाँ, गोरा चेहरा सब में एक स्वर्गीय आकर्षण है।

"क्या मैं खाना नहीं खाऊँगा ?"

"नहीं", श्यामा।

"तुम तो कहा करती थीं कि जब ऑफिस से मैं थक कर आऊँगा, तुम हमें खाना खिलाओगी। मेरे पैरों को सहलाओगी। और जब मैं सो जाऊँगा तो तुम मेरे चेहरे को देखोगी।......लेकिन अभी तुम खाना नहीं खिला सकतीं।

और श्यामा रमेश के बालों को सुलझाने लगी। रमेश को लगा कि दुनिया का सारा आनन्द इस क्षण में समाहित हो गया है।

कुर्सी पर बैठा रमेश खीझ उठा। वह छत पर घूमने लगा। उसने सोचा कि वह श्यामा को भुला देगा। वह जगे-जगे स्वप्न क्यों देखता है। और तब वह वास्तविकता पर आया।

सचमुच श्यामा की हालत बहुत खराब है। उसके माता-पिता उसे खाने को नहीं देते। उन लोगों को यह पता लग गया कि श्यामा रमेश से प्यार करती है। रमेश का उसका परिचय लाइब्रेरी में हुआ था। अब श्यामा कहती है कि वह रमेश के साथ ही रहेगी। इसके लिये उसको अपनी जिद पर टिकी हुई है।

उस दिन उसकी एक सहेली आयी थी। वह कहने लगी कि श्यामा एकदम बीमार की तरह लग रही है। उसकी सहेली जब उससे मिलने गयी तो उसकी मम्मी उसके पास आकर खड़ी हो गयी। श्यामा उससे कुछ कह नहीं सकी। वह केवल रह-रहकर रो उठती। उसकी आवाज में थोड़ी सी भी शक्ति नहीं बची थी।

रमेश ने सोचा कि उसके पगर पर होते तो वह चुपचाप श्यामा से मिल आता। वह कहीं बाहर निकल नहीं सकती है। उसके पास हर क्षण एक आदमी अवश्य रहता है। पिछले कई दिनों से उसकी यह हालत है।

रमेश फिर स्वप्नों की दुनिया में खो जाता है। उसे लगा कि वह एक बहुत बड़ा आदमी है। मंत्रियों के फोन उसके यहाँ आते रहते हैं। उसके नौकर ने उसको खबर दी कि श्यामा के पिता उससे मिलने आये हुये हैं। वह उसी तरह स्लीपिंग सूट में श्यामा के पिता से मिलने जाता है। ड्राइंग-रूम में श्यामा के पिता और उसके एक साथी बैठे हुए थे। रमेश ने झुककर अभिवादन किया। इसी बीच किसी का फोन आया।

"हलो, कौन साहब बोल रहे हैं।"

"...... ...."

ओ, सहकारिता मन्त्री बात करना चाहते हैं।

"........ ...."

"प्रणाम, हाँ अगर वो लोग तैयार नहीं होंगे तो उन लोगों को तैयार करना होगा। हम लोगों का अधिकार है कि हम लोग अपने औचित्य को पालें।"

"........ ...."

"मैं सबों के लिए तैयार हूँ।

श्यामा के पिता को लगा कि वास्तव में रमेश बाबू बहुत बड़े आदमी हैं। ये रिसर्च स्कालर ही नहीं इस राज्य में प्रभाव पूर्ण शक्ति को रखने वाले हैं। इतनी कम उम्र में इतना काम।

रमेश ने श्यामा के पिता से कहा, "मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?"

दूसरे सज्जन ने उत्तर दिया, "अब आप श्यामा को सम्भालिए।"

रमेश का ध्यान भंग हो गया। बात थी कि नीचे कोई पुकार रहा था। शायद मकान मालिक को कोई पुकार रहा हो। उसका स्वप्न भंग हुआ। एक अजीब बेचैनी का अनुभव करने लगा। चिड़चिड़ाहट उसके स्वभाव में आने लगी थी। वह अपने को बिखरे सपने का ढेर समझता है। उसके सामने

नौकरी की समस्या मुँह बाये खड़ी थी। आजकल पी० एच० डी० करने पर भी तो चैन नहीं मिलता। वह पटना छोड़ना नहीं चाहता है। शायद नौकरी के लिए उसे कहीं बाहर जाना हो। लेकिन इस चीज को पसन्द नहीं करेगा। सब जगहों से आश्वासन ही मिलता है।

उसने अपनी चिड़चिड़ाहट का कारण ढूढ़ निकाला। वह सवेरे नहीं उठता है। इसलिए उसका स्वाभाव इतना चिड़-चिड़ा हो गया है। इसका दूसरा कारण भी है। वह दूध नहीं पीता है। बात है रमेश स्वास्थ्य के नियमों को पालन करना चाहता है। उसका प्राकृतिक चिकित्सा में भी थोड़ा विश्वास है।

छत पर फिर वह घूमने लगता है। उसकी हालत गर्मी की इस शाम में एक ऐसे आदमी की तरह है जो सब दिन शीत प्रदेश में रहा है, और अब उसे राजस्थान की मरुभूमि में छोड़ दिया गया है। उसके ओठ सूख जाते हैं। समूचे शरीर में खुजली मालूम होती है। उस मरुभुमि में वह एक वृक्ष के नीचे बैठा है। हवा में देह को छील देने वाली ऊष्णता है। रमेश धीरे-धीरे नीचे उत्तर कर अपने कमरे में आकर रोशनी जलाता है। रोशनी में एक किसी का पत्र नजर आया। शायद किसी मित्र का पत्र था। बिस्तर को झाड़ने के वक्त शायद वह पत्र नीचे गिर गया था। पत्र को वह पढ़ने लगा। एक मित्र ने कुछ रुपये के लिए लिखा था। उसे ग्लानि हुई कि वह उसे समय पर सहायता नहीं कर सकता उसकी स्मरण शक्ति बड़ी क्षीण हो गयी है।

एक छिपकली पतिंगों को खा रही थी। बड़े ध्यान से छिपकली पतिंगों को देखती है। बिजली बत्ती पर सैंकड़ों पतिंगे इकट्ठे होते हैं। लेकिन पतिंगे जल नहीं पाते। छिपकली पतिंगे का काम तमाम करती है। छिपकली एक पतिंगे की तलाश में नीचे आकार गिर जाती है। रमेश फिर कोई चीज खोजने लगता है।

देवताओं का साँस्कृतिक शिष्ट मंडल

विश्वदेव शर्मा

जन्म तिथि—२१ अक्टूबर १९३१ ई० है। साहित्य की
सभी विधाओं में लिखा है । प्रतिष्ठित पत्रों में
प्रायः प्रकाशन होता रहता है । रचनाओं
का अन्य भाषाओं में अनुवाद हुआ
है। राजधानी दिल्ली में परि-
वहन एवं संचार मंत्रा
लय में हिन्दी
अधिकारी
हैं ।

उस दिन देवलोक की लोक सभा में खलबली मची हुई थी। पूरे तेतीस करोड़ देवताओं के प्रतिनिधि सभा भवन में विद्यमान थे और चर्चा थी। राष्ट्रपति ब्रह्मा जी के उस भाषण की जिसमें उन्होंने घोषित किया था कि मनुष्यलोक से उनके सम्बन्ध शनैः शनैः बिगड़ते जा रहे हैं। प्रधानमंत्री विष्णु ने भी लगभग उसी स्वर में कहा था कि वहाँ हवा ही कुछ ऐसी चल रही है कि स्वयं भारत, जो कि अब तक देवलोक का सैटेलाइट देश समझा जाता था, देवताओं के चंगुल में निकला जा रहा है।

जब सरकार ने स्वयं अपनी कमजोरी बतला दी तब तो विरोधी दल की और बन आयी। नारद जी भाषण देने खड़े हुये—"देवलोक में जब से गणतंत्र स्थापित हुआ है हमारा दिनोदिन पतन ही होता जा रहा है।" नारदजी इतना ही कह पाये थे कि स्पीकर पद से गणेशजी कड़क उठे—"मैं

माननीय सदस्य से अनुरोध करूंगा कि गणतन्त्र के विरुद्ध कुछ न कहें। हमें गणतंत्र और संविधान का आदर करते हुए काम करना है।

नारदजी अपने को संभाल कर बोले—"मैं गणतंत्र का विरोध नहीं करता। यह जरूर है कि जब तक गणतंत्र था और इन्द्र राजा बना हुआ हमारा शासन सुचारु रूप से चल रहा था। मगर ज्यों ही गणतंत्र स्थापित हुआ हमारी वैदेशिक नीति पर पानी फिर गया। पहले हमारे देवता अवतार लेते रहते थे जिससे हमारा जन-सम्पर्क का क.यं ठीक चलता था। मैं यह कहूंगा कि भारत से बिगड़ते हुए सम्बन्धों को देखते हुए विष्णु सरकार को स्तीफा दे देना चाहिये।"

कार्तिकेय इन दिनों प्रतिरक्षा मंत्री भी थे और प्रधान सेनापति भी। सरकार के स्तीफे की बात सुनकर वे चौंककर कुछ कहने वाले ही थे कि विदेश मंत्री श्री शंकर उठ खड़े हुए—"मैं विरोधी दल के नेता के सुझाव का आदर करता हूं।

सभा में सन्नाटा छा गया। "देव-समानता-लीग" के सदस्यों में अलबत्ता कुछ घुसर-पुसर हो रही थी। इस लीग में छोटे-छोटे देवता सम्मिलित थे जिन्होंने आन्दोलन चला रखा था कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवताओं को प्रीवी पर्स खत्म होनी चाहिये। सब देवता समान हैं, मगर विष्णु और शिव ने वैष्णव और शैव जैसी बड़ी बड़ी जमींदारियां बना रखी हैं जो खत्म होनी ही चाहिये। सहसा इस दल के नेता नागराज उठ खड़े हुए—"यह सरकार निकम्मी है। सड़ीगली सरकार को ! एक धक्का और दो !! दुनिया हमें बदलनी है, भूलो मत ! भूलो मत !"

नागराज की इस चिल्ल-पों ने सबका ध्यान आकर्षित कर लिया। उन्होंने इस स्तोत पाठ के बाद आगे कहना शुरू किया—"भारत में हमारे हितों की होली जल रही है और हमारी सरकार है कि वहां से न्यौते का इन्तजार कर रही है।" नागराज ने अपना मुक्का तान लिया और बोले "हमें ऐसी सरकार की जरूरत नहीं। अरे ! सद्भावना मंडल को अगर कोई नहीं बुलाता तो जबरदस्ती एक सांस्कृतिक मंडल भेजने से तुम्हें कौन रोकता है। अगर कहोगे कि हम एक नाटक मंडली भेजना चाहते हैं तब तो भारत

सरकार प्रतिबन्ध लगा देगी मगर यह क्यों नहीं कहते कि हम एक सांस्कृतिक मंडल भेजना चाहते हैं।"

नागराज जी ने बात तो कह ली लेकिन उससे कुछ सन-सनी नहीं फैली है। वे स्पीकर की तरफ मुड़े और बोले "अध्यक्ष महोदय ! मेरे दल को इस बात का बड़ा दुःख है कि अब तक कोई सांस्कृतिक मंडल भेजने पर विचार नहीं किया गया। इससे हम लोग इस सदन से वॉक आउट करते हैं।" और देखते देखते वे लोग सदन से बाहर हो गये।

सरकारी बेंचों पर इस समय न प्रधान मंत्री विष्णु थे न विदेश मंत्री शंकर। विष्णु को "देवलोक युनिवर्सिटी" का दीक्षांत भाषण देना था और शंकर जी को "अप्सरा-लीग" के सांस्कृतिक चैरिटी शो का उद्घाटन करने के लिए और बुलाया गया था। सरकार की ओर से जवाब देने की बात आ पड़ी खाद्य मंत्री श्री भीमसेन पर। भीमसेन यों तो मनुष्य थे मगर इधर काफी दिन से देवलोक में रहने के कारण सरकार में ले लिए गये थे। वह बोले "विरोधी दल का प्रस्ताव दरअसल कुछ वजन रखता है। सरकार इस पर गंभीरता से विचार करेगी।

सदन तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा। नारद जी तो अपना पोर्ट-फोलियो बैग अपनी मेज पर थमा-थम मारने लगे।

सदन की बैठक स्थगित हुई तो मंत्रिमण्डल की बैठक शुरू हुई। प्रश्न यह था कि सांस्कृतिक मण्डल की रचना किस प्रकार की जाय। यों ताण्डव नृत्य का तो मैं आचार्य हूं ही। मेरे ख्याल में यह मण्डल भेजा जाय।

सबने सर्वसम्मति से उसे मान लिया। शिव जी आगे बोले—"पार्वती आजकल देवलोक में सांस्कृतिक मामलों की मंत्रिणी हैं। वे भी डिप्टी लीडर बना कर भेज दी जायें तो ठीक रहे।

इस बात का विरोध भी किसी ने नहीं किया। शिवजी आगे बोले "देव-संसद का प्रतिनिधित्व भी जरूरी है। मेरे विचार से देव-सभा के नाते गणेश को इस मण्डल में शामिल कर लिया जाये।"

कोई कुछ बोले इससे पहले ही संसदीय मामलों के मन्त्री नंदीश्वर ने हुंकारा भरा—"बिल्कुल ठीक ! बिल्कुल ठीक !" अब शिवजी के लिए

कार्तिकेय को शामिल करना और रह गया था। मगर विष्णु की मुखाकृति देखी तो जरा रुक गये। बात पलटते हुये बोले—"एक सदस्या रहनी चाहिये देव-कांग्रेस हाईकमान की अध्यक्षता और हमारी वित्त-मन्त्रिणी लक्ष्मी जी। कहिये क्या ख्याल है विष्णु जी।"

"जी हां ! जी हां !" विष्णु जी बोले और एक और दलील पेश की "मनुष्य लोक वाले भी जानें कि महिलाओं को उनके यहां ही नहीं हमारे यहां भी बराबरी के अधिकार मिले हुए हैं।" इसके बाद इन्द्र को शिष्ट-मण्डल का मैनेजर बनाया गया। नारद जी को विरोधी दल की ओर से लिया गया और उर्वशी, मेनका और तिलोत्तमा आदि अप्सराएँ कलाकारों के रूप में चुनी गयीं। विश्वकर्मा 'स्टेज टेक्नीशियन' बने और सूर्य देवता 'लाइट एफेक्ट्स एक्सपर्ट' के रूप में साथ चले। देवलोक की सुप्रीम कोर्ट के चीफ जस्टिस यमराज का नाम भी किसी ने सुझाया मगर फिर राजनैतिक कारणों से उन्हें छोड़ दिया गया। अब मौका देखकर शिवजी बोले—"पिछले दिनों से भारत की ओर से हमारी सीमा का अतिक्रमण हो रहा है। उस दिन तेनसिंह ही हिमालय में घुस आया था। क्यों न हमारे प्रतिरक्षा मन्त्री कार्तिकेय भी इस मण्डल में भेज दिये जाएँ।

देवलोक के असाधारण गजट में (गजट एक्स्ट्रा आर्डिनरी) में शिष्टमण्डल की घोषणा कर दी गयी। भारत सरकार को भी सूचना भेज दी गई। नागराज के दल के अखबार ने दूसरे ही दिन लिखा—"भारत को आनेवाला सांस्कृतिक मंडल कुनबा-परस्ती का बेशर्म नमूना है। इसमें देवताओं के प्रगतिशील वामपक्ष का कोई प्रतिनिधित्व नहीं है।" मगर इस अखबार की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। एक दिन पुष्पक विमान में यह मण्डल पालम के लिए रवाना हो गया।

पालम के हवाई अड्डे पर कोई सरकारी अधिकारी नहीं था क्योंकि भारत सरकार ने सूचित किया था कि धर्म निरपेक्षता के नाते इस शिष्टमंडल को सरकारी तौर पर स्वीकार नहीं किया जा सकता। सब देवता अलबत्ता अपनी व्यक्तिगत हैसियत में आ सकते हैं। दूसरे, इस बीच, मनुष्य लोक में प्रचार यह किया गया था कि यह मिशन सांप्रदायिक है। इससे स्वागत करने

वाले कुछ पुराने फेशन के लोग रह गये थे, धोती-अंगोछा धारे, लम्बे-लम्बे तिलक लगाये। सेठ छदम्मी मल की "कृष्णा बस सर्विस" की एक बस मिशन को ले जाने के लिए किराये पर की गई थी। पहले खुल-खुल कर बैठे मगर फिर पता चला सभी को इस बस में भरना है इससे पहले सीटों पर ही लोग ठूँसे गये।

पुरानी दिल्ली की एक धर्मशाला में ठहरने का प्रबंध था क्योंकि होटलों में रहना मंहगा पड़ता और किसी भी समय देवताओं का धर्म संकट में पड़ जाने का खतरा था वहां के खान-पान को देखते हुए। देवता लोग नित्य कर्म से निवृत होकर बैठे तो उनकी स्वागत-समिति के अध्यक्ष लाला दुनियामल दुशाले वालों ने शंकर जी से कहा "भगवन् अपने सांस्कृतिक कार्यक्रमों का प्रबन्ध रामलीला ग्राउण्ड में किया गया है। मगर—एक बात —एक खास बात करनी पड़ी।" शंकर जी ने आश्वासन देते हुए कहा "कहो कहो वत्स ! निःसंकोच होकर कहो।"

"बात ये है—कि ये बात है कि हमें इस बात का भय था कि अगर देवताओं के कार्यक्रम का प्रचार किया गया तो शायद टिकट पूरे न बिकें इससे हमने यह घोषित किया है कि मशहूर फिल्मी सितारे और रेडियो कलाकर अपना सांस्कृतिक कार्यक्रम पेश करेंगे।"

"कोई बात यहीं, कोई बात नहीं !" शंकर जी ने उदार भाव से कहा उन्हें अपनी कला पर पूर्ण विश्वास था और निश्चय था कि लोग एक बार उनकी कला देख भर लें फिर तो फिल्मी सितारों को भूल जायेंगे।

उसी दिन रात को शो था। पंडाल खचाखच भरा हुआ था ! पड़ाके के साथ पर्दा हटा और अप्सराओं ने पारसी थ्येटर की लय में प्रार्थना गायी। प्रार्थना के बाद शंकर जी का तांडव नृत्य था। शंकर ने डमरू का नाद करके नृत्य शुरू किया। वे अभी कुछ ही मुद्रा दिखला पाये थे कि जनता की तालियां गूंज उठीं और सीटियां सुनाई पड़ने लगीं। शंकर जी जनता के कला प्रेम से उत्साहित हुए। मगर शीघ्र ही पता चल गया कि वह शोरगुल प्रशंसा का द्योतक नहीं था बल्कि केवल मात्र हूटिंग था। तभी पार्वती स्टेज पर आयीं और भीड़ कुछ शांत हुई ! मगर इस बार हंगामा बाहर शुरू

हुआ । फिल्मी एक्टरों और रेडियो कलाकारों का नाम सुन कर लोग इस कदर आये थे कि टिकट सब बिक गये थे और जनता उतनी ही बाकी थी । उस समय मेनका, उर्वशी और तिलोत्तमा अपना सामूहिक नृत्य प्रस्तुत कर रही थीं कि किसी ने बाहर की भीड़ में खबर फैलादी—"वैजयन्ती माला, रागिनी और पद्मिनी नाच रही हैं ।" भीड़ काबू से बाहर हो गयी । कनातें गिर पड़ीं और सारी भीड़ पंडाल में दाखिल ! पीछे का दबाव ऐसा पड़ा कि आगे के लोग स्टेज पर जा चढ़े । सारे कलाकारों को अपनी जान बचा कर भागना पड़ा ।

हुड़दंग मचा हुआ था । टिकट खरीदने वाली जनता चिल्ला रही थी—"हमारे पैसे वापस दो !"

आखिरी मंच पर लगी बल्लियों के ऊपरी सिरे पर एक आकृति दिखलाई पड़ी । ये नारद जी थे उन्होंने जोकर का वेश धारण कर रखा था मगर उनकी वेष-भूषा के बजाय इस समय की उनकी घबड़ाहट लोगों को ज्यादा हँसा रही थी । उनके हाथ में माइक्रोफोन था । उन्होंने "हल्लो ! हल्लो !" करके आवाज की जांच की और घिघियाते हुए घोषणा की "भाइयो ! आप अपने अर्द्ध टिकट घर में ले जाइये वहाँ हमारे मैनेजर मि० इन्द्रसेन टिकटों के पैसे लौटा रहे हैं ।

इस घोषणा का सुनना था कि भीड़ छंटने लगी । अब शंकर और उनके शिष्टमण्डल की जान में जान आयी । स्वागत समिति के अध्यक्ष दुनियामलजी भागे आये । उनकी धोती की लांग खुल गयी थी जिसे यथा स्थान प्रतिष्ठित करते हुए वे बोले—"एक्टरों के नाम के कारण गजब हो गया भगवन् । वर्ना तो इतनी भीड़ कभी न आती । इस बार सिर्फ आप लोगों का ही नाम देंगे ?"

"नहीं नहीं" शंकर जी ने बात काट कर कहा "अब हमारा कोई शो नहीं हो पायेगा । हमें आज ही लौट जाना होगा । प्रधान मंत्री विष्णु का अर्जेण्ट वायरलेस मैसेज आया है । हमारी संसद ने हमें वापस बुलाने का आदेश दिया है ।"

यह तो शंकर ही जानें कि उनकी बात सही थी या गलत मगर उनका

पुष्पक उसी दिन पालम से चला गया और देवलोक में देव समानता लीग के अखबार में मोटे मोटे हैडिंग के साथ छपा—

"गरीब देवताओं के धन का अपव्यय सांस्कृतिक मण्डल की असफल भारत यात्रा।"

आगे सम्पादकीय में पूछा गया था कि हमारी सरकार को यह बात क्यों नहीं मालूम थी कि भारत में सिने-अभिनेता इतने लोकप्रिय हैं। मन्दिरों के रूपों में हमने इतने दूतावास भारत में खोल रखे हैं मगर किसी ने भी हमें ठीक सूचना न दी। इस विषय में मांग की गयी कि सार्वजनिक जांच के लिए एक कमीशन बैठाया जाना चाहिये। आगे सुझाव दिया गया था कि सिनेमा के प्रमुख अभिनेताओं को "मनुष्य देवता कल्चरल सोसायटी" का सदस्य बनाया जाना चाहिये और उनके कार्यक्रमों द्वारा भारत में देवताओं के बारे में सद्भावना का प्रचार किया जाना चाहिये।

कहते हैं देवलोक की सरकार उक्त सुझावों पर गंभीरता पूर्वक विचार कर रही है।

आँसुओं का सैलाब

०

अनुपम कुमार

०

जन्म तिथि—अक्टूबर, १६४२ ई० है। रचना-
काल १६६० है। मुख्यतः कहानियाँ ही
लिखते हैं। पत्र-पत्रिकाओं में फुट-
कर प्रकाशन हुआ है। पता
वर्तमान में रायगढ़
म.प्र.में निवास
करते
हैं।

●

आखिर कल्लू धोबी से झड़प हो ही गई। बहुत बचना चाहा पर वह माने तब न? उसके करेक्टर पर एक लेख क्या लिख दिया मुसीबत सर उठा ली यदि जानता कि इसका इतना प्रभाव पड़ेगा तो भूल कर न लिखता। उसकी लड़की की शादी में बीस रुपाए दिए थे। कहता है—"बाबू जी आपके अहसान से दबा हूँ पैसा देकर दिल क्यों दुखाते हैं।" उसके इन करुण शब्दों को सुनकर कुछ कह नहीं पाता गरीब है, मेहनत के पैसे जरूर मिलने चाहिए समझे तब न?"

छेदीलाल पान वाले को छोटी से छोटी बात की खबर रहती है। जब से कल्लू धोबी पर लेख लिखा है। बड़ा मेहरबान है मुझ पर। चौरंगी पर दुकान है। काफी भीड़ रहती हैं। ग्राहक पटाने में सिद्धहस्त है। उस दिन पान खिलाते खिलाते कह बैठा "अलख भैया जरा हमारा भी ख्याल रखियेगा।' मतलब समझते देर न लगी। पुरा रंगरूट है। कई बार लोगों ने कहा

"छेदीलाल अब तो काफी कमा रहे हो घर भी बना लिया है। शादी कर लो।" पर माने तब न। हंसकर कहता है, "अरे भैया जाने दो। बड़ा रंगीला है। सारी कमाई ऐश आराम में खर्च कर देता है। हफ्ते में दो दिन चकला जरूर जाता है। शहर में कौन सी नई बाई आई है। किसकी नथ कब उतरने वाली है। चम्पाबाई की अदाएं कैसी हैं, हुस्नबानो कैसी गजलें सुनाती है, बड़े उस्ताद के हाथ तबले पर कैसे चलते हैं। सब उसे जुबानी याद है।

रेहाना नाम की कोई नई तवायफ बाजार में आई है। छेदीलाल उसकी गजलें सुन आया है। बड़ी तारीफ करता है। बड़ा ही दर्दीला गला है। केवल गाती है। कई बार कह चुका "चलो तुम्हें दिखा लाऊं" मुझ पर न सही उस पर लिख लेना। जिन्दगी में पहली बार किसी तवायफ के कोठे पर प्रवेश कर रहा था। चारों ओर देखा, अनेकों लोग बैठे थे। रेहाना बाई आकर बैठी। झुककर सभी को कोर्निस किया। पायलों को झनकार देकर वह गा उठी "दुनिया वाले किसी का भला नहीं करते..." बाई का गला बड़ा दर्दीला था गाने के बाद उसने अपने हाथों से सभी को पान खिलाया। मेरे करीब आते ही छेदीलाल कह उठा "अलख भैया एक कहानी इस पर भी लिख डालो" रेहाना के उन आंसुओं से कबरेन नयनों को देखा इन्कार न कर सका। केवल मौन रह गया। रेहाना का अस्फुट स्वर सुनाई पड़ा "मुझ पर लिखना हो तो कल आइएगा।" भारी मन लिए घर लौट आया। छेदीलाल गुनगुना रहा था। 'दुनिया वाले किसी का........।'

दूसरे दिन अन्धेरा होते ही छेदीलाल के साथ रेहाना की कोठी पर जा पहुंचा। आवाज महफिल में गूंज उठी "काश किस्मत बदल जाए हमारी........" वही दर्दीली आवाज थी। पान देते समय उसने मेरे हाथों में एक छोटा सा कागज थमा दिया। छेदीलाल भी न देख सका। धीरे-धीरे सीढ़ियां पार कर लौट आया। छेदीलाल चुप था। कभी-कभी गुनगुना उठता था "काश किस्मत बदल......। उसे दुकान पर छोड़ लौट आया। रेहाना का पत्र हाथों में था। खोलकर पढ़ा।

प्रिय कहानीकार,

आप रेहाना के सम्बन्ध में बहुत कुछ जानना चाहते होंगे। मैं स्वयं अपने

सम्बन्ध में कुछ छिपाना नहीं चाहती छिपाऊँ भी तो क्या ? जमाने ने आज मुझे जिस कगार पर ला पटका है, आप स्वयं देख चुके हैं। आज मैं समाज के नाम पर कलंक हूं। तवायफ की जिन्दगी गुजार रही हूं।

किस्मत ने मुझे निस्सहाय कर दिया। माता पिता के देहावसान के पश्चात समाज में मैं अकेली रह गई। पढ़ी लिखी थी। सोचा था कहीं भी नौकरी कर अपना गुजारा कर लूंगी। पर हाय रे यह समाज! जहां भी नौकरी मिलती पुरुष की जो निगाहें मुझे घेरे रहतीं। आखिर मैं एक नारी थी। जिसका कोई रक्षक न था जो जवान थी। कब तक बचाती अपने को आखिर। तंग आकर एक दिन कुएं में कूद गई। पर बदकिस्मती ने वहां भी पीछा न छोड़ा। किसी गुन्डे के हाथ लग गई जो मुझे यहां छोड़ गया। पुलिस का भय मुझे भागने से रोक रहा है। बड़ी अम्मा की गिद्ध दृष्टि सदैव मेरे चारों ओर लगी रहती है। छुटकारा चाहती हूं। पर सहारा नहीं मिल रहा है।

आप कहानीकार हैं। आपके हृदय में जमाने से सताई हुई इस बदनसीब नारी के लिए थोड़ी भी ममता होगी तो छुटकारा दिलाने से इन्कार न कर सकेंगे। यदि आज रात्रि तीन बजे इस कोठी के नीचे तक आ सकें तो मैं छुटकारा पा सकती हूं।

—रेहाना

सुबह बड़ी देर तक सोता रहा। नौ बजे नींद खुली तो रेहाना मेरे समीप जमीन पर बैठी थी। "मेरे सम्बन्ध में आपने क्या सोचा है। वास्तव में उसके सम्बन्ध में मैंने कुछ सोचा नहीं है शाम तक बताऊंगा। दो आदमियों का खाना तैयार कर रखना। बाहर आ दरवाजे पर ताला लगा दिया। छेदीलाल की दूकान पर पहुंचा। छेदीलाल का चेहरा भी उतरा हुआ था। बड़ी अम्मा ने सुबह ही थाने में रिपोर्ट लिखवा दी। बयान दोपहर को होगा। छेदीलाल भी बयान देगा। जो हो चुका उसे प्रकाश में करना, गले में फांसी लगाना है। धड़कते हृदय से छेदीलाल की दूकान से हट आया। बाजार से गुजरते समय कल्लू धोबी भी टोक बैठा "अलख भैया क्या सोच रहे हो ?" क्या मुसीबत आ पड़ी है"। नहीं, कह कर छुटकारा पा लिया। रेहाना के लिए एक साड़ी खरीदकर लौट आया। रास्ते में सुना छेदीलाल बयान देने थाने गया है। रेहाना खाना तैयार किए थी। दोनों ने साथ खाया। साड़ी उसके हाथों थमा दी

श्रोर पूछने से पहिले ही बोला 'रेहाना तुम्हारा यहाँ रहना खतरे से खाली नहीं। बड़ी अम्मा आसमान सर उठाए हैं। छेदीलाल बयान देने गया है। रात्रि को तुम्हें शिमला पहुंचा दूंगा। वहाँ मेरा एक मित्र है शिशिर कुछ दिन वहीं रह जाना फिर वह श्रोर मैं तुम्हारे लिए कोई स्थायी व्यवस्था कर देंगे। उसने मौन स्वीकृति दे दी।"

शाम को कुछ देर के लिए बाहर निकला। छेदीलाल बयान दे आया। उसने मेरे सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं। यह जानकर हृदय को शान्ति मिली। स्टेशन से शिमला के दो टिकट खरीद लाया। गाड़ी रात्रि ग्यारह बजे जाने वाली थी। रिक्शे वाले को रात्रि ग्यारह बजे आने को कह आया। घर लौटा तो आठ बज चुके थे। खाना खाकर सामान समेटने में लग गया। ठीक ग्यारह बजे रिक्शा वाला आ पहुँचा मोहल्ला शांत था। दोनों रिक्शे पर बैठ गए। रिक्शे वाले के अभ्यस्त पांव पैडिल पर आ पड़े श्रोर रिक्शा बढ़ चला। रामरसन पण्डित के घर की श्रोर देखा तो हृदय धक कर गया। वह बरामदे पर खड़े रेहाना की श्रोर गौर से देख रहे थे। मैंने रेहाना से घूंघट निकालने को कहा। स्टेशन पहुंचते ही ट्रेन आ पहुँची। रिक्शे वाले को पैसे चुका दोनों ट्रेन पर आ बैठे।

शाम को छोटी-छोटी डिब्बों वाली ट्रेन शिमले के टर्मीनस पर खड़ी हो गई। सामान लेकर हम रिक्शे पर सवार हुए।

शिशिर का घर ढूंढ़ने में कोई कठिनाई नहीं हुई। एक आवाज से ही बाहर निकल आया। तपाक से गले मिला। रात्रि तक सब बातें मैंने उसे बतला दीं रेहाना का भार उस पर डाल सुबह मैं लौट आया। उसने वायदा किया कि शीघ्र ही रेहाना को नौकरी दिला देगा।

घर पहुँचते ही पण्डित रामरसन आ धमके। सख्त नाराज थे। ठाकुर होकर ऐसे कार्य करते तुम्हें लज्जा न आई? "नेता जी (शिव के पिता) के आदमी कितने बार आ चुके हैं। पुलिस वालों को उन्होंने बहुत समझाया है। यदि वह न होते तो ताला टूट जाता। उनसे मिल लो अभी।" कह कर चले गए पण्डित रामरसन। कई बार सोचा, कह दूं "पण्डित जी जब आपकी कन्या

महीनों गायब रही तब आप चुप क्यों बैठे थे ? भूल गए वह दिन जब इसी अलख ठाकुर ने उस गर्भवती लड़की को अपने गांव भेजकर आपकी इज्जत बचाई थी। पर कह न सका। खाकर लेट गया! दरवाजा खुला था। छेदीलाल हाथ में लाठी सम्हाले अन्दर आया "अलख तुमने मेरे साथ दगा किया। उस तवायफ को भगा लाए, यह नादानी है तुम्हारी। नाहक दुश्मनी बढ़ा रहे हो, इज्जत गई सो अलग। बेहतर है उसे बड़ी अम्मा को लौटा दो" "फिर गौर से मेरी ओर पुनः देख कह उठा। आज चाहता था तुम्हें अपने किए की सजा दे दूं पर तुम्हारे आंखों में तैर रहे आंसुओं को देख लौट रहा हूं पर याद रक्खो हमारी तुम्हारी दोस्ती अब सदा के लिए जुदा हो गई। दूसरे दिन बाहर निकला। रामरसन की घर वाली ने मुझे देख दरवाजा बन्द कर लिया। मिश्रा जी छीः छीः करते करीब से गुजर गए। कल्लू धोबी ने देखकर नजरें घुमा ली। रोज अलख भैया अलख भैया लगाए रहता था। सड़क के दूसरे तरफ बैठा रमवा मोची ने भी जैराम जी नहीं कही। किसी ने कुछ पूछा नहीं। मुझे लगा जैसे मैंने भयंकर पाप कर डाला हो।

पायल के आँसू

•

कुमारी अमरजीत कौर

•

विगत दो वर्षों से कहानियाँ लिख रही हैं। पत्र-
पत्रिकाओं में प्रकाशन हुआ है। उदयपुर
राजस्थान की प्रसिद्ध शिक्षण संस्था
विद्या भवन में अध्यापन
कार्य के साथ एम.ए.
हिंदी में अध्य-
यन रत
हैं।

•

"मुझे छोड़ दो, मुझे छोड़ दो !" पायल पागलों की तरह चिल्ला उठी। डाक्टर ने इशारे से भैया को छोड़ देने को कहा। छोड़ते ही पायल भागती हुई कमरे में पहुँची और चारों तरफ अपनी दृष्टि दौड़ाने लगी। ऐसा लगता था कि वह कोई खोई वस्तु ढूँढ़ रही है। अचानक ही उसकी दृष्टि 'टेबुल' पर रखे चित्र पर जा टिकी। चित्र को ध्यान से देख कर केवल उसके मुँह से 'माँ' निकला और वहीं बेहोश होकर गिर पड़ी। 'डाक्टर' ? कातरता से भैया ने पूछा।

"गहरा सदमा पहुँचा है ! आप·······"

बात पूर्ण भी न हो पाई थी कि पायल बीच में ही कराह उठी। उसके होंठ हिल रहे थे। धीरे-धीरे उसकी आवाज तेज होती गई, वह बड़बड़ा रही थी।

"नहीं, नहीं; यह कभी नहीं हो सकता, कभी नहीं !"

"पायल" बीच में ही भैया ने आवाज दी।

डाक्टर ने भैया को बोलने से मना कर दिया वह फिर बड़बड़ाई "मैं नहीं मान सकती, कभी नहीं, इतना कहते ही वह सिसक उठी और धीरे-धीरे आँखें खोल कर चारों तरफ अपनी दृष्टि दौड़ाई पर सिसकती ही रही।

डाक्टर ने प्यार से पायल के सिर पर हाथ फेरा परन्तु सांत्वना पाते ही दुखिया का दुख कम होने के स्थान पर अधिक हो उठा। उसने डाक्टर की ओर देखा और रोते-रोते बोली "डाक्टर साहब, क्या यह सच है कि जिनकी मृत्यु हुई है वह मेरी मां नहीं थी ?"

"नहीं पायल"

इतना सुनते ही वह फिर पागलों की भांति चिल्ला उठी "तो फिर लोग क्यों कहते हैं ?"

उसने कातरतापूर्ण दृष्टि भैया पर डाली और बोली "भैया, क्या लोग झूठ नहीं बोल रहे ?"

"पर पायल, तूने मेरी बात ही कब सुनी ! सब लोग झूठ ही तो बोल रहे हैं। मां तो हम सब की एक ही थी, फिर तेरी मां क्यों नहीं ?" भैया कठिनता से मुस्कान लाते हुए बोले।

"भैया" पायल खिल उठी।

"अच्छा पायल" तुम ठीक हो जाओ, फिर एक कहानी सुनाऊंगा।"

"अभी सुनाओ न ?" मचलते हुए पायल बोली।

"अच्छा तो सुन।"

'एक शहर में दो बहनें रहती थीं। दोनों बहनों की शादी एक ही घर में हुई थी। कुछ समय बाद एक भयंकर रात, कृष्ण पक्ष की रात, चारों ओर काली घटायें छाई हुई थी, भयंकर मूसलाधार वर्षा हो रही थी, बादलों की गड़गड़ाहट से पृथ्वी तक कांप रही थी, ऐसी भयंकर रात को छोटी बहन के यहां एक कन्या का जन्म हुआ। कन्या के होते ही मां, नवजात शिशु को देख भी न पाई थी कि यकायक दशा बिगड़नी शुरू हुई और बिगड़ती ही गई। छोटी बहन ने बड़ी बहन को करीब बुलाया और आंखों में आंसू भर, हाथ जोड़ कर बोली "दीदी, मैं जा रही हूँ" बड़ी बहन रोते-रोते छोटी से जा चिपकी।

छोटी ने बड़ी कठिनता से कहा "एक वचन दोगी दीदी ?"

दीदी ने रोते हुए गर्दन हिला कर बहन का हाथ अपने हाथ में ले लिया।

'मुझे वचन दो दीदी, कि मेरे मरने के बाद मेरी बेटी को तुम पालोगी! किसी को न दोगी।"

दीदी जिनके नेत्रों से अविरल अश्रु धारा प्रवाहित हो रही थी, रोते-रोते वचन दिया और उसी समय एक हिचकी के साथ ही छोटी बहन नवजात शिशु को रोता छोड़ सदा के लिये चली गई।

पायल की आंखों से भी आंसू बह निकले। उसने एक प्रश्न सूचक दृष्टि भैया पर डाली। भैया के नेत्र भी भर रहे थे, उन्होंने कहना शुरू किया—

'दीदी ने उस शिशु को पालने में अपना सारा जीवन लगा दिया। उन्होंने अपने बच्चों से बढ़ कर उसे प्यार दिया। उन्हें अपने बच्चों की चिन्ता नहीं थी जितनी उस बालिका की थी, परन्तु मौत के हाथ से कौन बचा है पायल एक दिन वह घड़ी भी आ पहुंची जब दीदी भी उस बालिका को छोड़ अपनी बहन से जा मिली, जहां जाने के बाद कभी कोई नहीं लौटता।"

"भैया, वह बालिका अभी भी है ?"

"हां, है क्यों नहीं ? खूब बड़ी है पढ़ती है।" "अच्छा, तू यह बता कि उन दोनों बहनों में से कौन उस बालिका की मां हुई? जिसने जन्म दिया या पाला?"

"जिसने पाला" पायल ने झट से उत्तर दिया।

"तू ठीक कहती है, पायल।"

"पर बताओ न भैया, वह लड़की कहां है ?"

"मेरे सामने पायल !"

"आपके सामने?" हैरान होती हुई पायल बोल उठी "वह तो मैं हूं भैया?"

"हां तू ही है पायल, वह लड़की जिसे मेरी मां ने हम से भी बढ़ कर प्यार दिया, तू ही है।"

पायल की आंखें भर आई, वह कुछ बोलना चाहती थी कि बीच में ही भैया ने टोक दिया "अब तो तूने ही कहा है कि जन्म देने वाली से पालने वाली मां कहलाने की अधिकारी है। अब तो तुझे विश्वास हो गया न पायल।"

"भैया" कहते हुए पायल उठ कर भैया से जा लिपटी। उसकी आंखों में थे प्रसन्नता के आंसू।

●

जिन्दगी

○

भगवानचन्द्र विनोद

○

जन्म तिथि—२४ मार्च, १९२० ई० को ग्राम सिमरोल (इन्दौर) में जन्म हुआ। हास्य-व्यंग्य कविताएं एवं पैरोडियां लिखने की ओर विशेष रुचि है। गीत भी लिखते हैं। प्रतिष्ठित पत्रों में प्राय प्रकाशन होता रहता है। कहानियां भी हास्य प्रधान लिखते हैं। बाल साहित्य के कई कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। कई मासिक, पाक्षिक और दैनिक पत्रों के प्रधान सम्पादक रह चुके हैं। वर्तमान में "वीणा" मासिक का सम्पादन कर रहे हैं। डेली कालिज इन्दौर में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं।

●

लाला कुलदीप लाल की हालत आजकल बहुत खराब है। मालगुजारी की वसूली में घूस लेते समय रंगे हाथ पकड़े गये थे।

कुलदीप लाल बड़े सवेरे घर से निकल गये थे, शायद कुछ रुपयों का इन्तजाम हो जाए। वैसे तो आजकल किसी के सामने हाथ पसारना ठीक नहीं है। जमाना बड़ा खराब है।

वह गए कि डाकिया चिट्ठी दे गया। उनकी स्त्री अभिरामा ने चिट्ठी खोली और पढ़ी। पढ़ कर अवाक् रह गई। युग बीत जाने के बाद बड़े भाई ने छोटे भाई लाला कुलदीपलाल को चिट्ठी लिखी थी।

मजमून तो छोटा ही था, पर था बड़ा ही भावपूर्ण। हृदय उड़ेल कर पत्र लिखा गया था।

नया निश्चय और क्या होगा ? यही कि फिर इन अभागे बच्चों को साथ लेकर बड़े भाई के घर जाना पड़ेगा और उनकी देहरी लीपनी पड़ेगी। अभिरामा के हृदय में वे पिछली घटनाएं आज भी कांटों की तरह चुभ रही थीं। नौकरी मिलने एक दिन पहले तक किस तरह उसे अपनी गोतनी से अपमानित होना पड़ा था।

आज साल भर से ज्यादा हो गया लालाजी को बेकार बैठे। अब तो नौबत आ गई थी झाड़ू-खपरी तक की। अब अभिरामा के लिए यह कैसे संभव था कि बेकारी की हालत में फिर गोतनी की देहरी लीपने जाय।

अगर यह चिट्ठी उनके हाथ लग गई, तो फिर उनको रोकने वाला कौन है ? वे निश्चय अपने भाई के घर जाकर ही दम लेंगे।

उसने निश्चय कर लिया कि चिट्ठी वह अपने पति को देखने नहीं देगी। देखने देगी तो फिर बात कुछ और–की–और हो के रहेगी।

लाला कुलदीपलाल की बोली उनके हृदय को छलनी बना चुकी थी। कलेजा रह-रह कर मुंह को आ रहा था।

"बैठे-बैठे खाना, खाता है।"

हां, मैं तो ठीक बैठे-बैठे ही खाना खाती हूं। धरती फटती भी नहीं कि उसमें समा जाऊं—कहते-कहते वह फफक-फफक कर रोने लगी। शरीर पर एक भी गहना नहीं छोड़ा। नैहर में मां-बाप ने भी जो कुछ दिया था उसे भी बेच खाया।

सचमुच एक अजीब उलझन में फंस गई है अभिरामा। दोनों छोटे-छोटे बच्चों के मुरझाए हुये करुण चेहरे सदा उभरते रहते हैं उसकी नजरों के सामने। वह स्वयं ही नहीं समझ पाती कि उसके होठों पर कब मुस्कराहट आती है और कब आंखों का जल पलकों से गलकर चू पड़ता है।

अभिरामा सोचती जा रही थी–सोचती जा रही थी। अभी-अभी थोड़ी ही देर पहले तो उसने सोचा था कि यह अच्छा हुआ जो उसके पति आज घर से बड़े भोर निकल गए। उसकी किस्मत तेज थी, जो चिट्ठी उसके ही हाथ लगी, अन्यथा········।

उधर लाला कुलदीपलाल न जाने कितने दरवाजों की खाक छान चुके थे। कोई कर्ज लेने को तैयार नहीं हो रहा था।

धन्य हैं, वैजू बाबू जिन्होंने आज लाला की इज्जत रख ली। पचास रुपये बिना जेवर के दे दिये।

लाला ने सोती साहु की दुकान पर जल्दी-जल्दी मोटा-मोटा अनाज खरीदा, पाँच रुपये का। घर पहुँचते-पहुँचते लगभग दो बज गए।

अभिरामा ने बड़े भय्या की चिट्ठी लाला के आगे रख दी।

लाला ने चिट्ठी पढ़ी। थोड़ी देर मौन रहे। फिर अपनी फटी कमीज की जेब में डाल ली। संध्या हो चली, पर चिट्ठी के बारे में कोई प्रसंग नहीं छेड़ा गया। लाला को बहुत अफसोस था कि इस तरह कर्ज ले-लेकर कब तक दिन काटते रहेंगे।

अभिरामा मन ही मन कुढ़ रही थी। मन में तनिक भी लाज लगती ही नहीं कि आखिर इतने दिनों तक जिन्दा रहे हैं किसके बूते पर ? मेरे सब गहने बेच कर चाट गए। अब फिर क्या चाटेंगे ? बेटा-बेटी का करेजा…!" न जाने क्या-क्या बक गई, अभिरामा पीसते-पीसते।

सोने का समय हुआ। लाला ने अभिरामा को अपनी बाजुओं में समेट लेना चाहा, पर अभिरामा खामोश रही। कुछ नहीं। लाला ने प्यार से कहा—देखो, आज मैंने तुम्हारा कान भी खाली कर दिया था, पर वैजू बाबू ने लेने से साफ इन्कार कर दिया और वैसे ही ५०) रुपये दे दिये। अभिरामा खुश थी। औरत को खुश करना हो तो उसे छोटा-सा कोई गहना (जेवर) गढ़ा दीजिये और नाखुश करना हो तो नैहर की शिकायत विनोद में भी करके देख लीजिये, कैसा रंग जम जायेगा।

अभिरामा की खुशी का लाभ उठाते हुए लालाजी बोले—"भइया की चिट्ठी का कुछ माने-मतलब समझा ?"

"उहूँ !"—अभिरामा बोली।

"सहोदर भाई हैं न। खून को खून खींचता है।"

'तो फिर कल ही चल रहे हैं न ?"

"उहूँ………कल नहीं। महीने के आखिरी में चलेंगे।"

तुम कुछ दिन जैसे-तैसे बिताना और मैं बाकी रुपये से नौकरी की तलाश में सहरसा जाकर रहूँगा। नहीं कुछ तो भूदान कमेटी के ऑफिस में भी छोटी-सी नौकरी पकड़ लूँगा। फिर देखा जायगा। अच्छी नौकरी की तलाश करता रहूँगा।

महीने का अन्तिम सप्ताह चल रहा था। बस दो-चार दिन ही बाकी थे, महीने का अन्त होने में। फिर तो पहली तारीख आ ही जायगी।

पर इतने से ही क्या जीवन-संग्राम का इतिहास खतम हो जायेगा। नहीं, जिन्दा रहने के लिए यह संग्राम वहाँ भी जारी रहेगा—निरन्तर जारी रहेगा। पर अब तो जिन्दा रहना मृत्यु के बराबर ही है अभिरामा के लिए।

पति कह रहा था—"देखो, प्रिये ! यह तो जिन्दगी की एक लड़ाई है। दुष्ट चीनियों से जूझने के लिए बहादुर भारतीय सिपाहियों को क्या-क्या नहीं भुगतना पड़ा ? हम भी अपनी जरूरत पर छोटे बन कर अपमान का बोझ अपने सिर पर उठाने जा रहे हैं। भला इसमें बेइज्जती की क्या बात है ?

"जब बेइज्जती ही उठानी है तो फिर इसके लिए और भी तो हो सकते हैं। इस गाँव को और जिला-जेवार को छोड़ दो, जहाँ कोई अपने को जानने पहचानने वाला नहीं होगा, वहीं जाकर बसेंगे। तुम मजदूरी कर लेना और मैं किसी बड़े घर में बर्तन-बासन माँजने का काम कर लूँगी।"

"दरअसल बात यह है कि तुम भाभी के सामने झुकना नहीं चाहती हो। दूसरों के घर जूठा बासन-बर्तन मलोगी, पर भाभी के साथ कुछ दिन काटना मंजूर नहीं है, क्यों यही बात है न ?"

मुँह फेर कर करवट बदलती हुई अभिरामा बोली—"हो सकता है, शायद यही बात हो। मेरा तो सिर फिर गया है। मैं इस समय कुछ समझ नहीं पा रही हूँ कि क्या करूँ ? क्या न करूँ ?

"तुम भी क्या पगली-सी बातें करती हो। भला इस जरा-सी बात के लिए इतनी चिन्ता करने की क्या जरूरत पड़ गई है। दो-चार दिन रहने के बाद सारा मामला ठीक हो जायगा। भइया क्या समझते नहीं हैं इन बातों को। वे सब कुछ समझते-बूझते हैं, नहीं तो भला खुद ही चिट्ठी क्यों लिखते ?"

दूसरी तारीख भी राकेट की गति से आ धमकी। भोर होते ही अभिरामा ने याद दिलाई है—"जाना है न ?"

"हाँ, हाँ, जरूर।"

"तो फिर, कब ?"

"बस, दोपहर का खाना खाकर थोड़ी देर आराम करके चल देंगे घर से।"

दोपहर का खाना खाकर चल देंगे, लालाजी ने यह बात इस ढंग से कही, जैसे दोपहर का खाना-पीना कोई खास बात न हो इनके लिए।

अभिरामा सोच रही थी—"जब जाना ही है, तो देर-अबेर करने की क्या जरूरत है ? धूप में और परेशान हो जायेंगे, बच्चे सब कुम्हला जायेंगे। सुबह-सुबह ही निकल जाना अच्छा रहेगा।"

अभिरामा अभी तक कुछ ठीक से तय नहीं कर पायी थी कि क्या करना है कि अचानक उसे दरवाजे पर एक छोटी-सी भीड़ दिखाई पड़ी। उसने देखा, भैंसुरजी और गोतनी दोनों मय बाल-बच्चों के सामने खड़े हैं। झट से उसने अपनी गीली आँखें पोंछ लीं और ओट में आ गई।

शायद चिट्ठी का जवाब न पाकर भैंसुरजी स्वयं उन्हें मनाने के लिए आ गये हैं। भाई ही तो हैं। अवश्य ही इनको हम लोगों की तंगी का पता लग गया होगा, तभी तो······!

लालाजी ने बड़े भइया को प्रणाम किया। कुशल समाचार पूछा।

अभिरामा अपनी गोतनी को अन्दर ले गई। आँचल से पैर छूकर पाँच बार प्रणाम किया।

सबों का चेहरा बहुत ही उतरा हुआ था। जैसे बीमारी से उठे हों। शरीर में प्राण ही न हों। बच्चे भी चुपचाप एक-दूसरे से सटकर बैठ गए और इधर-उधर टुकुर-टुकुर निहारने लगे।

आतंक तो लालाजी और अभिरामा पर पहले से छाया हुआ था ही। अब इस बड़े ठाट को अनायास अपने घर में पाकर तो दोनों के तोते ही उड़ गए थे। अभिरामा सोच रही थी कि 'क्या सचमुच भैंसुरजी अपने छोटे भाई की मदद के लिए आए हैं। या·······'

बड़े भइया बोले······· "हम लोग········"

इतना कहकर वे जरा हिचकिचाहट के साथ रुके।

लाला कुलदीप बोल उठे—"यही तो मैं भी सोच रहा था भइया, कि आखिर इस तरह अचानक·······"

"बात यह है कुलदीप, कि कुछ दिनों के लिए हमलोग तुम्हारे यहाँ रहने आए हैं। सालभर से बेरोजगार हो गया हूँ। बीमारी पीछा नहीं छोड़ रही है। अब तो दिन गुजारने भी मुश्किल हो गए हैं हमारे। भागलपुर में अभी मेरे लिए रहना······· । इसीलिए········"

अभिरामा की बड़ी गोतनी चुपचाप किंकर्त्तव्यविमूढ़-सी उसके सामने खड़ी थी और अभिरामा अवाक् होकर सोच रही थी—क्या यह सचमुच उसकी हार है या जीत ?

लाला कुलदीपलाल को उसी दिन ३ बजे की डाक से एक एप्याइन्टमेंट लेटर मिला—

पत्रांक ९९०२

बिहार प्रादेशिक
भारत सेवक समाज
पटना—४
तिथि—२-१-६३

प्रिय महोदय,

श्री मंत्रीजी के आदेशानुसार आपकी बहाली तत्व प्रचारक के पद पर भागलपुर में की जाती है। मासिक वेतन आपको १७५) रुपये मिलेंगे। जिस दिन से आप अपना कार्यभार सँभालेंगे, उस दिन से आपकी नौकरी समझी जायगी।

भवदीय
शशिशेखर राजहंस
२—१—६३
व्यवस्थापक

पाप की निशानी

विनोदकुमार सिन्हा

जन्म तिथि—जौलाई, १९४० ई० है।
मुख्यतः कहानियाँ ही लिखते हैं।
फुटकर प्रकाशन हुआ है।
कई संकलनों में
रचनाएँ संक-
लित हैं।

चंपारण जिले में एक नया कालेज खुला था। यों तो लोगों का अनुमान है कि वहाँ की जलवायु अच्छी नहीं है। फिर भी मुझे नौकरी करनी थी। एम० ए० पास करने के बाद चार जगह आवेदन पत्र दिया था। तीन स्थान से नकारात्मक उत्तर आया। मन खिन्न हो उठा। मैंने मन में यह सोच लिया था कि कहीं भी नौकरी मिल जाये अवश्य करूँगा, भले ही पहाड़ पर या जंगल में ही क्यों न जाना पड़े।

कहने की कोई आवश्यकता नहीं रह गई है कि पत्र आते ही मैं चंपारण जिला चला गया तथा नवीन कालेज होने के नाते प्राचार्य ने सहर्ष मुझे प्राध्यापक के पद पर नियुक्त भी कर लिया।

रविवार के दिन पास के जंगली क्षेत्रों में मैं अपनी बन्दूक लेकर शिकार खेलने चला जाता था। अपने छात्र जीवन से ही मैं शिकार खेलना बहुत पसन्द करता हूँ। किसी पर्व के अवसर पर तीन दिनों की छुट्टी हो गई। मैं भी इसी सुअवसर की ताक में था कि ऐसा सुअवसर आ पहुँचा। मैं, प्रो० शर्मा और प्रोफेसर पाण्डेय के साथ कुछ आवश्यक सामग्रियों को बाइसिकिल पर रखकर शिकार में गया।

लोगों से पूछने पर पता चला कि यहाँ से बीस मील पर एक बड़ी सी बस्ती है जहाँ रात में विश्राम करने की बड़ी सुविधा होगी। समीप जाने पर यह भी पता चला कि वहाँ एक नील की कोठी भी थी कोठी के साहब ने बड़ी कोशिश से एक विश्रामशाला (गेस्ट-हाउस) बनवाया था।

मैं उस स्थान पर अपने मित्रों के साथ पहुँच गया। गाँव में पहुँचने पर लोगों ने चारों तरफ से हम तीनों को घेर लिया। उपस्थित सज्जनों के मुखमण्डल खिन्न मुद्रा में थे।

"बाबू, आप गोरे साहब तो नहीं है।"

सुनकर मैं दंग रह गया। उनके हावभाव से स्पष्ट विदित होता था कि गोरे साहबों के द्वारा बहुत सताया गया हो या डर रहा हो। फिर भी मैं बोला—"नहीं मैं गोरा साहब नहीं हूँ, गोरे साहब लोग तो अपने देश विलायत चले गये।"

"कहाँ ?" वह आश्चर्य प्रकट करते हुए बोले—"इस देश से बहुत दूर समुद्र पार एक देश है, वहाँ उन लोगों का देश था। यहाँ तो अब तुम लोगों का राज्य है, गोरे साहबों का नहीं।"

"हम लोगों का राज ? आप लोग साहब होकर कैसी बातें करते हैं।"

"मैंने उसे समझाया, देखो मैं साहब नहीं हूँ। कालेज में नौकरी करता हूँ। विश्राम करना चाहता हूँ।

"चलो बाबू, मेरे यहाँ तुम लोग ठहरो। जितने दिन चाहो, विश्राम करो। लेकिन विश्रामशाला में तो ठहरने नहीं देंगे।"

मैंने कहा—'ऐसा क्यों ? वह तो इसी के लिये बनी है न।"

"बुरा न मानो तो बाबू बताऊँ........." कहकर वृद्ध महोदय ने अपने आप ही कहना प्रारम्भ कर दिया—

"आज से कई वर्ष पूर्व यहाँ नील की कोठी थी। कुछ गोरे साहब यहीं रहकर खेती करवाते थे। उस समय मैं नवयुवक था। उसी एक समय एक गोरे साहब शिकार खेलने आये, वे उसी विश्रामशाला में ठहरे थे। उनके साथ दो नौकर भी आए थे। दो दिन ठहरकर वे चले गये। दो मास के बाद वे फिर आये। हम लोगों के यहाँ उत्सव था। ग्राम की सभी युवतियाँ पीपल के वृक्ष की पूजा करने गई थीं, गोरे साहबों ने उन सभी को देखा। उन

सबके रूप की भरपूर प्रशंसा की। मेरे बड़े भाई की लड़की सितावो को बुलाया भी। सितावो आई। गोरे साहब ने उसे नाचने को कहा। वह भोली लड़की शरमाकर भाग गई।

रात में जब सारा गाँव निद्रा की गोद में था। गोरा साहब जाग रहा था। प्रकृति की निस्तब्धता से उसने लाभ उठाना चाहा। वह बन्दूक लेकर सितावो के यहाँ गया। सितावो चौंक गयी। लेकिन बन्दूक देखकर कुछ बोल न सकी। वह गोरा साहब सितावो को अपनी गोद में लेकर विश्रामशाला में चला गया। मेरा बड़ा भाई मंगर देख रहा था। गोरे साहब ने उसे बन्दूक दिखाया। वह कुछ बोल न सका। कुछ देर के बाद साहब का नौकर सितावो को घर पहुँचा आया। गोरा साहब ने सितावो के साथ बलात्कार किया।

हम सभी दंग रह गये उसकी हरकत से। लेकिन "बिल्ली के गले में घंटी कौन बाँधे ?" यही समस्या आ पड़ी थी। गोरे साहब का पाप हमारी कमजोरी और मजबूरी के कारण बढ़ता गया। आये दिन हमारी बहू-बेटियों की इज्जत इसी विश्रामशाला में लूटी जाती थी। अब अन्याय असीम हो गया। हम लोग अधिक देर तक सोये न रह सके। हम लोगों ने गाँव में एक पंचायत बैठायी। हम लोगों के हृदय में विद्रोह की भावना सुलग उठी। बाहर का आदमी हमारे यहाँ आकर हमारे गाँव की बहू-बेटियों की इज्जत लूटकर चला जाय और हम देखते रहें। यह कैसी नीचता है।

वृद्ध महोदय की आँखों से अश्रुपात होने लगा। फिर भी बोलता रहा—भारत की आत्मा गाँवों में बसती है बाबू। हम गाँव वाले किसी से कुछ लेते नहीं हैं। अपने भूखों रहकर सबों को अन्न देते हैं। लेकिन इस एहसान के बदले कोई हमसे इज्जत ले ले, यह कैसे हो सकता है ?

लेकिन वह गोरा साहब नहीं माना। हमारी सोई आत्मा को उभारा। हमारी आत्मा सुलग उठी। एक दिन फिर वह आया। हम सभी सचेत थे। वह इस बार सितावो को उठाकर अपनी विश्रामशाला में जा रहा था। गाँव वालों ने पीछे से ही उस पर गहरी चोट की। साहब पीछे देख भी नहीं सका।

सारा गांव कांप उठा। पुलिस घटना स्थल पर आयी। हमारे गांव के मुखिया मंगर को दरोगा ने हथकड़ी पहनाई। गांव वालों ने विरोध किया। पुलिस आंख मूंदकर गोली चलाने लगी। दस लोग धराशायी हो गये। खून की नदी बह गई। मुखिया को फांसी की सजा हुई। लेकिन इसमें क्या अपराध था। क्या हम इन्सान नहीं है? क्या हमारी इज्जत नहीं है।

कुछ ही दिन के बाद आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। गोरे साहब लोग अपनी कोठी छोड़ यहां से भाग गये। सत्याग्रहियों ने उनकी कोठी को विध्वंस कर दिया। लेकिन विश्रामशाला यों ही छोड़ दिया। हां उसके नामकरण में अन्तर अवश्य हुआ। गोरे साहबों ने गेस्ट-हाउस के नाम से उस भवन का नामकरण किया था, परन्तु सत्याग्रहियों ने नाम बदलकर विश्रामशाला कर दिया।

विश्रामशाला बन्द करवा दी। विश्रामशाला आज भी कायम है लेकिन मूक है। अगर वह बोल सकती तो अवश्य कहती उन अत्याचारों की कहानियां। किस तरह हमारी मां बहनों की इज्जत लूटी गई और हमारे ग्यारह ग्रामीणों को मौत के घर भेजा गया। विश्रामशाला पाप की निशानी है। उसे देखकर अभी भी खून खौल उठता है। भला ऐसे अपवित्र स्थान में हम जानबूझ कर आपको कैसे रहने दें।

●